वयस्क शिक्षा प्रकाशन -१४

अनौपचारिक शिक्षा १५-२५

NON FORMAL EDUCATION 15-25

FOR REFERENCE ONLY

श्यामलाल कौशिक
पुरुषोत्तमलाल तिवारी

374.5
KAU-A

शिक्षा विभाग, राजस्थान, बीकानेर (राज.)
Education Department Rajasthan
BIKANER (Rajasthan)

© शिक्षा विभाग, राजस्थान
बीकानेर

संस्करण
1976

Sub. [illegible] Systems Unit,
N[illegible] I[illegible]ute of Educational
Planning and Aministration
17-B,SriAurbindo Marg,NewDelhi-110016
DOC. No....311.............
Date..........15/7/82

लेखक
श्यामलाल कौशिक
पुरुषोत्तमलाल तिवारी

आवरण :
विभासदास

मुद्रक :
जयपुर प्रिण्टर्स
जयपुर (राजस्थान)

प्राक्कथन

राज्य-सरकार ने पिछले वर्षों प्राथमिक-शिक्षा के विस्तार के लिए जो अनेकमुखी प्रयत्न किए वे निस्सन्देह फलदायी सिद्ध हुए, तथापि किशोरों तथा नवयुवकों का एक बड़ा प्रतिशत अब तक भी शिक्षा से वंचित रहता चला आ रहा है। फिर ऐसे शिक्षार्थियों की संख्या भी कम नहीं है, जो इस व्यवस्था को सुविधाजनक नहीं पाते और प्राथमिक शिक्षा पूर्ण किए बिना विद्यालय छोड़ जाते हैं।

अतः विद्यालय छोड़ जाने वाले किशोरों तथा नवयुवकों को उनकी सुविधा के अनुसार शिक्षा उपलब्ध कराने की आवश्यकता तीव्रता से अनुभव की गई। सन् १९७४ में राज्यादेश संख्या एफ–८ (५८) शिक्षा/ग्रुप–१/७३ दिनांक ३० अक्तूबर १९७४ के द्वारा राज्य के कुछ नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्रों में अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु प्रयोगात्मक रूप में खोले गए। ये केन्द्र आयु-वर्ग ८-१४ तथा आयु-वर्ग १५-२५ के लिए पृथक-पृथक खोले गए।

परम्परित व्यवस्था से एक भिन्न संकल्पना पर आधारित होने के कारण अनौपचारिक-शिक्षा के आधारिक संप्रत्यय (कंसेप्ट), उसके शिक्षाक्रम तथा उसकी परिवीक्षण आदि की अपेक्षाओं को स्पष्ट करते हुए, तत्सबन्धी शिक्षा-केन्द्रों के सुचारु संगठन, संचालन तथा वीक्षण आदि में लगे हुए कार्यकर्त्ताओं के उपयोगार्थ ऐसी लघु-पुस्तिकाएँ कि जिनका वे संदर्शिका-वत् उपयोग कर सकें, तैयार कराया जाना आवश्यक समझा गया। यह कार्य शिक्षा-निदेशालय द्वारा की गई अपेक्षा के अनुसार राजकीय शिक्षक प्रशिक्षण महा-विद्यालय, बीकानेर ने सम्पन्न किया और आयु-वर्ग ८-१४ तथा आयु-वर्ग १५-२५ के लिए पृथक-पृथक दो लघु पुस्तिकाएं तैयार की।

मुझे विश्वास है इन पुस्तिकाओं से अनौपचारिक शिक्षा-कार्य में संलग्न कार्यकर्ताओं को अपने कार्य के सुचारु सम्पादन में समुचित सहायता मिल सकेगी।

इन्द्रजीत खन्ना
निदेशक
प्राथ० एवं माध्य० शिक्षा, राज०
बीकानेर

NIEPA DC
D00311

क्रम

3	आवश्यकता
8	संकल्पना
12	स्वरूप
23	संगठन

१ आवश्यकता

सार्वजनीनता का लक्ष्य

हमारा राष्ट्र सार्वजनीन प्राथमिक-शिक्षा के लिए वचनबद्ध है। हर राज्य का दायित्व है कि वह प्राथमिक शिक्षा को सार्वजनीन बनाए।

पिछले समय में इस दिशा में अनेक प्रकार से उपाय किए गए हैं, जिनमें से प्रमुख उपाय रहा है औपचारिक स्कूलों की संख्या में खूब वृद्धि करना। उसके साथ-साथ भरती अभियान चलाना, निर्धन परिवारों के बालक-बालिकाओं को मुफ्त पठन-सामग्री देना, वेशभूषा देना, पौष्टिक नाश्ता देना, एक पहर की स्कूलें चलाना, स्कूलों के साथ शिशु क्रीड़ा-केन्द्र जोड़ना, प्राथमिक शालाओं में महिला-शिक्षक लगाना, कन्या शालाओं में बालिकाओं को लाने-लेजाने की सुविधा देना, दुर्गम क्षेत्रों में आश्रम के ढंग की शालाएँ खोलना, अनुसूचित वर्गों के लिए व्यापक स्तर पर छात्रावास खोलना, पाठ्यक्रम को स्थानीय आवश्यकता के अनुसार लचीला बनाने की सुविधा देना, शिक्षकों के सतत शिक्षण के उपाय

करना, आदि। ये उपाय राजस्थान में भी किए जाते रहे हैं ताकि अधिक से अधिक बालकों को स्कूलों में आने और शिक्षा पाने की सुविधा मिल सके। निजी क्षेत्र में भी सुविधाएँ बढ़ाई गई हैं और अनुदान की प्रथा को सरल से सरलतर करने की नीति बरती गई है। अनुदान न लेने वाली संस्थाओं को भी मान्यता देने की नीति में खुली छूट दी गई है, जिसके कारण मिशनरी भावना वाली संस्थाओं ने दुर्गम क्षेत्रों में भी अपनी शालाएँ खोली है।

इन सब प्रयासों के बावजूद बालकों का बहुत बड़ा प्रतिशत विद्यालयों में नहीं आ पा रहा है और फिर अपक्षरण (विद्यालय छोड़ जाने वाले बालकों) की समस्या इतनी विकट है कि ११ वर्ष के होते-न-होते ६५ प्रतिशत बालक और १५ वर्ष के होने से पहले ८५ प्रतिशत बालक शालाओं से बाहर निकल जाते हैं। कई क्षेत्रों में कई लोगों का यह विचार बनता जा रहा है कि योजना-बद्ध ढंग से और अधिकाधिक धन व्यय करते हुए भी अपक्षरण की समस्या से बचा नहीं जा सकता। घर-घर शाला खोल दी जाए, ऐसी क्षमता हमारे देश की आगामी ५० वर्षों में भी नहीं हो सकती। और देश के समृद्ध होने तक सार्वजनीन शिक्षा प्रतीक्षा करती रहे – ऐसा कभी सोचा नहीं जा सकता क्योंकि सार्वजनीन शिक्षा से देश की समृद्धि की बात जुड़ी हुई है। फिर वर्तमान संकल्पना के अनुसार शिक्षा चूँकि ऐसी चीज तो है नहीं कि एक बार प्राप्त कर ली और फिर जीवन भर के लिए छुट्टी। यह तो जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। साथ ही यह जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्धित भी होनी चाहिए। अनौपचारिक शिक्षा की बात शिक्षा को जीवन पर्यन्त तथा सर्वपक्षीय बनाने के उद्देश्य को लेकर सोची गई है।

4

कहने की आवश्यकता नहीं कि औपचारिक शिक्षा व्यवस्था से हमारे समाज का एक छोटा वर्ग ही लाभान्वित हो पा रहा है और एक बहुत बड़ा वर्ग इससे वंचित रह गया हैं। यही कारण है कि समाज में एक ओर नितांत आधुनिक तकनीकी वर्ग बन रहा है तो दूसरी ओर आदिवासी पौराणिक कृषि और वनजीवी समुदाय लाचारी का जीवन जी रहा है। एक ओर तो ऐसा वर्ग हमारे यहाँ बन गया है जो अंतरिक्ष कार्यक्रम और परमाणु तकनीकी में प्रवेश कर गया है तो दूसरी ओर ऐसा ७० प्रतिशत समुदाय है जो अभी भी बैलगाड़ी से आगे की तकनीकी से अनजान है।

देश में यह भयंकर अन्तर न केवल प्रजातंत्र को उपहासात्मक बनाता है, बल्कि शिक्षा के मामले में हमारी उदासीनता और अकर्मण्यता भी प्रमाणित करता है। सार्वजनीन और जीवनव्यापी शिक्षा इसलिए देश की प्राथमिक आवश्यकता है; बल्कि इस रूप में अत्यावश्यक है कि उसे तत्काल और प्रयोजन-मूलक ढंग से प्रभावशाली बनाया जाए। हर नागरिक के शिक्षित और दीक्षित हुए बिना न तो देश विकास की तीव्र गति पकड़ सकता है, न उस प्रगति का तकनालाजीकल लाभ प्रत्येक नागरिक उठा सकता है। अतः इसलिए कि प्रत्येक नागरिक देश का सक्रिय कार्यकर्ता बने, इसलिए कि वह देश में घट रही घटनाओं का महत्व समझ

सके, इसलिए कि वह अपने को नई परिस्थितियों के अनुकूल ढाल सके, इसलिए कि अपने जीवन की बढ़ती पेचीदगियों को वह सुलझा सके, अपने धंधे के ज्ञान को नवीनतम बनाता रह सके, इसलिए कि वह अपने लक्ष्य के अनुकूल परिस्थितियाँ बना सके, उसे शिक्षित होना ही है। उसे शिक्षित इसलिए भी होना हैं कि यदि वह शिक्षित नहीं होगा तो समय से पिछड़ जाएगा। इसलिए अनौपचारिक शिक्षा की उपयोगिता एवं वांछनीयता सभी के लिए होते हुए भी इसमें शिक्षा से वंचित रह गए वर्ग को प्राथमिकता दी जा रही है।

सार्वजनीन शिक्षा के सन्दर्भ में औपचारिकता की सीमाएँ

औपचारिक स्कूली ढाँचे की कुछ ऐसी सीमाएँ हैं जो एक बहुत बड़े समुदाय को स्कूलों से बाहर रखने को बाध्य करती है, जो अन्दर आ जाते हैं उनमें से बहुत बड़े प्रतिशत को पुनः विद्यालय छोड़ना पड़ जाता है। क्योंकि समाज का बहुत बड़ा भाग अपने जीवन-यापन के कामों में लगा हुआ है, उसके लिए पूरे समय की शाला में जाना सम्भव नहीं रहता। इसलिए औपचारिक स्कूलें अपने सारे औपचारिक साज-संभार के साथ न तो सारे छात्र समुदाय को आकर्षित कर पाती है, न लाए गए छात्र समुदाय को प्राथमिक स्तर की शिक्षा पूरी करने तक रोक पाती हैं।

सार्वजनीनता में बाधक तत्व तथा उनके निराकरण के उपाय

औपचारिक स्कूलों के जो तत्व शिक्षा को सार्वजनीन बनाने में बाधक होते हैं वे मुख्यतः निम्नलिखित है : 5

(क) पूर्णकालिकता : औपचारिक व्यवस्था की एक सीमा पूर्णकालिक अध्ययन की है। हमारे देश में आर्थिक कारणों से, सामाजिक और व्यावसायिक कारणों में – शहरों में भी और गाँवों-कस्बों में भी, लोगों की इतनी सुविधा है नहीं कि वे या उनके बालक पूरे समय तक—यानी ७ घंटे के स्कूल की सुविधा भोग सकें। सामाजिक जीवन और आर्थिक आवश्यकताएँ समाज के बहुत बड़े वर्ग के बालकों को पूरा दिन स्कूली कार्यक्रम में बिताने की इजाजत नहीं देतीं।

इस प्रकार स्कूलों की पूर्णकालिकता शिक्षा की सार्वजनीनता में एक मुख्य बाधा है। अगर हम यह सोचें कि इस समय-तत्व को इतना लचीला बनाया जाए कि वह स्थान-भेद से और व्यक्ति-भेद से शिक्षार्थियों के लिए सुविधाजनक बन सके, तो स्कूल से बाहर रह गए या बाहर निकाल फेंके गए समुदाय में शिक्षा के लिए फिर से रुचि जगाई जा सकती है।

इसके लिए हमें कोई ऐसी व्यवस्था सोचनी होगी जिसमें किसी वर्ग या समुदाय को शिक्षा के लिए ऐसा समय मिल सके जब कि वह फुरसत में हो और साक्षरता के लिए अथवा ज्ञानार्जन के लिए कुछ अनुकूलतया समय दे भी सके। औपचारिक स्कूल-तन्त्र में हम वैसी कल्पना कर नहीं सकते, न यही सोच सकते

हैं कि स्कूलों में शिक्षारत नई पीढ़ी को और शिक्षा से वंचित युवा पीढ़ी को कहीं एक साथ मिला भी दें।

अतः समय के प्रसंग में अंशकालिक अनौपचारिक केन्द्रों की स्थापना से हीं कोई समाधान खोजा जा सकता है।

(ख) **अनिवार्यता** : समय के साथ ही जुड़ा हुआ दूसरा बाधक तत्व है– नियमित उपस्थिति की अनिवार्यता। औपचारिक स्कूलों में इस तत्व का बड़ा महत्व होता है, यह भी विश्वास किया जाता है कि इस अनिवार्यता का पालन किए बिना शिक्षा में अधूरापन रह जाता है। वस्तुस्थिति यह होती है कि घर के कामों में सहयोग, या दूसरे आर्थिक-सामाजिक कारणों से, छात्रों का बड़ा समुदाय इस अनिवार्यता को निभा नहीं पाता। अतः या तो दण्ड के भय से, या अपमान के भय से, या अवरोधन (बार-बार फेल हो जाने) के कारण उसे स्कूल का त्याग करना पड़ता है।

सार्वजनीनता अगर लानी है तो समय की पूर्णकालिकता में सुधार करने के साथ-साथ उपस्थिति की अनिवार्यता में भी ढील लाने की बात सोचनी होगी।

अंशकालिकता के साथ-साथ अगर हम यह भी तय करें कि उसमें भी काफी सीमा तक उपस्थिति की अनिवार्यता में छूट रखी जाए और उपस्थिति को थोपने की बजाय रुचि के आधार पर उसे कायम किया जाए तो कोई समाधान निकल सकता है। अनौपचारिक केन्द्रों में एक आधार यह भी स्थापित किया जा सकता है।

(ग) **अतिकालिकता** : समय से सम्बन्धित एक बाधक औपचारिक तत्व है – एक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त करने के लिए ५ वर्ष या ८ वर्ष या १० वर्ष तक के लम्बे समय की तपस्या करना। जो बालक समय पर विद्यालय में प्रवेश कर जाते हैं और वहाँ वे निरन्तर बने रहते हैं वे तो यह तपस्या कर लेते हैं, परन्तु जो प्रवेश नहीं कर पाए अथवा प्रवेश करने के बाद बाहर आ गए, उन्हें वर्षों की इस गिनती को पूरा करने की शर्त पर पुनः विद्यालय नहीं लाया जा सकता।

इस समस्या के निराकरण के लिए हमें अंशकालिकता और अनिवार्यता के साथ-साथ अध्ययन-काल की संक्षिप्तता को भी आधार बनाने की बात सोचनी चाहिए। उदाहरणार्थ, हमें ५ वर्ष के शिक्षाक्रम को घटाकर १½ या २ वर्ष; ३ वर्ष से घटाकर १ वर्ष या ऐसा ही कुछ करना होगा ताकि कार्यरत शिक्षार्थी अपनी सुविधा के अनुसार उन आधारिक योग्यताओं का अर्जन कर लें जो कि शिक्षा के लिए आवश्यक है।

(घ) **भवन-रूढ़िता** : औपचारिक स्कूलों में स्थान, स्कूल-भवन, स्कूल परिसर की मर्यादाएँ भी होती है जो सभी बालकों के लिए सुविधाजनक नहीं रहतीं। उनमें से अनेक के विद्यालय न आने अथवा आकर छोड़ भागने का कारण ये मर्यादाएँ भी बनती हैं।

ऐसे बालकों को पुनः शिक्षा के दायरे में लाने के लिए स्थान की इस अनिवार्यता को भी समाप्त करना होगा और उनके लिए स्थान का चयन उनकी सुविधाओं को ध्यान में रखकर करना होगा।

(च) अनुपयुक्त पाठ्यक्रम : औपचारिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के दोष भी सार्वजनीनता में बाधक बनते हैं। उनमें से प्रमुख दोष हैं–अनुपयोगी विषय-वस्तु और विविधता का अभाव। प्रचलित पाठ्यक्रम में जहाँ एक ओर ऐसी सामग्री का समावेश रहता हैं जो छात्रों के लिए उपयोगी नहीं होती वहाँ दूसरी ओर सभी को एक जैसे विषय पढ़ने पड़ते हैं और अपनी आवश्यकताओं एवं रुचियों के अनुसार चयन करने की सुविधाएँ नहीं मिल पातीं। परिणाम स्वरूप औपचारिक शिक्षा अव्वल तो सभी बालकों को आकर्षित ही नहीं कर पाती और जो विद्यालय में प्रवेश ले लेते हैं उनमें से बहुत से कालांतर में अरुचि से घबराकर विद्यालय छोड़ जाते हैं। इसलिए पाठ्यक्रम को आवश्यकता-आधारित बनाना और उसमें विविधता लाना बहुत जरूरी है।

●

२ संकल्पना

शिक्षा में अनौपचारिक होने का तात्पर्य यह है कि वर्तमान औपचारिक स्कूलों के जो तत्व ऐसे हैं जो समुदाय के एक बड़े अंश को शिक्षा का लाभ उठाने से रोकते हैं या उसे अपने प्रवाह से बाहर फेंक देते हैं, उन तत्वों का शमन करते हुए एक ऐसी पूरक व्यवस्था की बात सोचना जो कि वंचित समुदाय को शिक्षा का लाभ उसकी सुविधा के अनुसार दे सके।

अनौपचारिक होने का तात्पर्य यह भी है कि हम औपचारिकता के कुछ स्वीकार्य तत्वों में आकस्मिक तत्वों (अनौपचारिक अनुभवों) की संजीवनी मिला दें।

अनौपचारिक होने का तात्पर्य

जैसा कि पहले अध्याय में उल्लेख किया गया हैं, शिक्षा जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्धित और जीवन-पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। ऐसी शिक्षा की व्यवस्था किसी भी औपचारिक दायरे के भीतर नहीं हो सकती, यह तो अनौपचारिक रूप से ही संभव हो सकती है। अनौपचारिक शिक्षा समाज के सभी वर्गों एवं सभी उम्र के व्यक्तियों के लिए है, भले ही वे बालक हों अथवा युवा या प्रौढ़, पुरुष हों अथवा महिला, कार्यरत हों अथवा बेरोजगार, साक्षर हों, अर्ध-साक्षर हों अथवा अशिक्षित, गाँव के रहने वाले हों अथवा शहर के। यहाँ तक कि जो

औपचारिक शिक्षा पा रहे हैं अथवा पा चुके हैं उनके लिए भी अपने निजी और रोजगार सम्बन्धी विकास के लिए अनौपचारिक सतत शिक्षा आवश्यक है। किन्तु हमारे देश में अभी तक समाज का एक छोटा सा विशिष्ट वर्ग ही औपचारिक शिक्षा से लाभ उठाता रहा है। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए प्रथम चरण के रूप में अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था उस बड़े वर्ग के लिए की जा रही हैं जो किसी भी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रहता आया है। इस वर्ग से निर्धन, भूमिहीन, आदिवासी एवं महिलाएँ मुख्य रूप से आते है। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए वर्तमान सन्दर्भ में अनौपचारिक शिक्षा व्यवस्था विकसित करने का यह प्रयोजन हैं कि शिक्षार्थी अपने काम-काज के साथ-साथ अपने आसपास के जगत के प्रति गवेषणात्मक दृष्टिकोण भी रख सकें, और अपने को समयानुकूल बनाने की चेतना से उदासीन न हो जाएँ। तथापि अगर कोई शिक्षार्थी किसी विशेष कारण या किसी विशेष प्रयोजन से औपचारिक-शिक्षा की धारा से पुनः प्रवेश करना चाहता है तो उसके लिए भी अनौपचारिक शिक्षा में उपाय करने होंगे।

कई बार ऐसी स्थिति आ सकती है कि कोई शिक्षार्थी अनौपचारिक शिक्षा द्वारा ही अपने को इतना योग्य बना ले कि वह आठवीं पास का प्रमाण-पत्र लेना चाहे : मान लीजिए आठवीं का प्रमाण-पत्र उसके रोजगार या उसकी नौकरी में उसके लिए फायदेमन्द हो, तो उसे वैसी तैयारी कराने, परीक्षा में बिठाने और मदद करने का दायित्व अनौपचारिक शिक्षा में नकारा नहीं जाएगा। और हाँ, अनौपचारिक शिक्षा में वे बातें तो होनी ही चाहिए जो शिक्षार्थी को उसके जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने में सहायक सिद्ध हो सकें और साथ ही उसमें जीवन पर्यन्त सीखते जाने की लालसा जगाए रख सकें।

अनौपचारिकता के प्रचलित रूप

यह बात नहीं है कि अनौपचारिक-शिक्षा के रूप में हम कोई सर्वथा नई और अनोखी संकल्पना कर रहे हों। समुदाय में विभिन्न प्रयोजनों के लिए जिस ढंग से अनेक प्रकार के अंशकालिक और सामयिक शिक्षा-प्रयास चल पड़े हैं, वे भी अनौपचारिक शीर्षक के अन्तर्गत ही आएँगे, जैसे – विभिन्न प्रकार के रात्रि विद्यालय, पत्राचार-पाठ्यक्रम, कोचिंग कक्षाएँ, सिलाई-केन्द्र, महिला-मण्डल, सहकारी विक्रय-मण्डल आदि जो कि कार्यरत या व्यवसाय रहित मगर जरूरतमन्द लोगों के लिए कार्यानुभव शिक्षा के रूप में चलाए जा रहे हैं, **क्रियात्मक-शिक्षा केन्द्र** जो कि निरक्षर या अर्धसाक्षर लोगों के लिए चलाए जा रहे हैं, **परिवीक्षाधीन-शिक्षा** जो कि खादी केन्द्रों, ग्रामोद्योग-केन्द्रों, कुटीर उद्योग विभाग, उद्योग विभाग, श्रम विभाग आदि द्वारा परिवीक्षाधीन कार्य करते हुए दी जाने लगी है – ये तथा ऐसे ही अनेक और भी अनौपचारिक शिक्षा-उपाय हमारे समाज में चल पड़े है। ये उपाय हर स्तर और हर प्रकार के लोगों की शिक्षा और व्यावसायिक उन्नयन की सतत शिक्षा की जरूरतें पूरी कर सकें, इस हेतु विभिन्न

राजकीय विभाग भी **विभागीय प्रशिक्षण कार्यक्रम, विभागीय परीक्षाएँ, कार्य-गोष्ठियाँ, सभा, सम्मेलन, प्रदर्शनी, मेले** आदि आयोजित करने की ओर ज्यादा ध्यान दे रहे हैं।

अनौपचारिक शिक्षा के इन प्रचलित कार्यक्रमों में निश्चित रूप से एक लक्ष्य और एक प्रयोजन होता है। उनका प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। किन्तु चूँकि एक तो ये सब अनौपचारिक उपाय और कार्यक्रम अधिकतर आकस्मिक और क्षणिक उद्देश्य वाले होते हैं, इसीलिए उनके प्रभाव और मूल्यांकन का प्रामाणिक उपाय नहीं हो सकता। दूसरे, वे कार्यक्रम या तो विभागीय दायित्व के निभाव के लिए या व्यावसायिक दृष्टि से होते हैं : अतः इनमें जो प्रतिभागी आते हैं वे काम पूरा होने के बाद उससे टूट जाते हैं : यह वैसी ही बात है जैसे कि एक स्कूल का छात्र स्कूल छोड़ देने के बाद उससे टूट जाता है।

अनौपचारिक शिक्षा की संकल्पना से इन उपायों से एक भिन्नता यह माननी होगी कि वह न तो नितांत औपचारिक रहेगी न नितांत आकस्मिक संयोग वाली रहेगी। वस्तुतः तो वह औपचारिक शिक्षा का एक ऐसा अनौपचारी रूप होगी जिसमें कुछ तो औपचारिकता होगी और कुछ आकस्मिकता।

ऊपर बताए गए जन-शिक्षा के उपायों और कार्यक्रमों में कुछ तो औपचारिक प्रयोजन से अर्द्ध-औपचारिक शैली में चलते हैं, जैसे–किसी परीक्षा की तैयारी कराने के लिए; कुछ एकदम अनौपचारिक शैली में चलते हैं, यथा - प्रदर्शनियाँ और
10 मेले; कुछ दोनों के मध्यवर्ती चलते हैं, यथा - कार्यगोष्ठियाँ, प्रशिक्षण कैम्प आदि।

उन कार्यक्रमों और उपायों में प्राथमिक-शिक्षा का पक्ष अब तक उपेक्षित रहा है। हाई स्कूल परीक्षा, हायर-सैकण्डरी परीक्षा, विश्वविद्यालय की किसी डिग्री की परीक्षा, विभागीय प्रशिक्षण आदि के लिए तो ऐसे उपाय प्रचलन में हैं– चाहे विभागीय स्तर पर या निजी व्यवसाय के स्तर पर – मगर प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर के लिए (जो कि शिक्षा का बुनियादी पक्ष है) वैसे कोई उपाय प्रचलन में हैं नहीं।

अनौपचारिक शिक्षा के लक्ष्य

अनौपचारिक शिक्षा की संकल्पना अपने आरम्भिक रूप में इस प्राथमिक स्तर की शिक्षा की सुविधा के लिए है। दूसरे शब्दों में हम यह मानें कि जैसे कोई अपेक्षित व्यक्ति (ड्राप आउट) किसी कोचिंग कक्षा की मदद लेकर सैकण्डरी की परीक्षा दे दे, या विश्वविद्यालय की किसी परीक्षा के लिए तैयारी कर ले, वैसे ही एकदम प्राथमिक स्तर पर शिक्षा से वंचित या बहिष्कृत व्यक्ति भी प्राथमिक-शिक्षा की सुविधा पुनः प्राप्त कर सके – इसके लिए अनौपचारिक-शिक्षा की संकल्पना ८–१४ आयु स्तर पर की जा रही है।

यह आरम्भिक लक्ष्य अनौपचारिक शिक्षा की स्थापना के समय क्या होगा कि जिन्हें अब तक साक्षरता या शिक्षा का लाभ नहीं मिला, जो किसी जीवन-

व्यवसाय में लग गए, या जो किसी कारणवश किसी कक्षा स्तर पर स्कूल छोड़ गए, उन्हें समय, स्थान और साधन सम्बन्धी ऐसी सुविधाजनक परिस्थितियों में शिक्षा का मौका मिले कि वे जहाँ हैं, वहीं से पुनः अपने को शिक्षित कर सकें। इसी को चाहे अंशकालिक कहिए, चाहे सतत शिक्षा कहिए या अनौपचारिक कहिए, या विभिन्न स्तरीय प्रवेश सुविधा के लिए शिक्षा कहिए।

इस संकल्पना में यह भी समाहित हैं कि अनौपचारिक शिक्षा में औपचारिकता के तीन तत्वों – समय, स्थान और साधन में किसी सीमा तक अनौपचारीकरण भी करना पड़ेगा ताकि जो रूढ़ियाँ शिक्षार्थी को बाँधती हैं, उसके काम में व्यवधान डालती हैं, उसे मानसिक हीनता का अनुभव देती हैं, उसके व्यक्तित्व का दमन करती हैं – उनसे बचा जा सके।

१५–२५ वर्ग में अनौपचारिक-शिक्षा में यह आशय भी जुड़ेगा कि उन सभी विविध स्तरों वाले, विभिन्न योग्यता वाले और विभिन्न कामों में रत शिक्षार्थियों के लिए, उनकी सुविधा का ध्यान रखते हुए, सामूहिक और व्यक्तिगत परामर्श एवं सहायता की व्यवस्था भी अनौपचारिक-केन्द्र को करनी होगी। यह भी सम्भव हो सकता हैं कि केन्द्र में आ रहे शिक्षारत और निरक्षरों के बीच ही आपसी संवाद और आदान-प्रदान होने लगे – इस ढंग से कि किसी का अहं आहत न हो और एक की जानकारी का लाभ दूसरे को मिल सके।

तो, अनौपचारिक शिक्षा का आरम्भिक लक्ष्य क्रियात्मक साक्षरता होगा। इस शिक्षा के अन्तर्गत आने वाले शिक्षार्थी ऐसे भी हो सकते हैं जिन्हें या तो अक्षर-ज्ञान का अवसर मिला नहीं, या जो अनभ्यास के कारण साक्षरता से भी अपक्षरित हो गए हैं। इस स्थिति में उन्हें अक्षर-ज्ञान तथा संख्या-ज्ञान की स्थिति से आरम्भ कराना होगा।

लेकिन मात्र इतना-सा स्कूली दायित्व ही अनौपचारिक-केन्द्र का लक्ष्य नहीं है। ऐसे लोगों को तथा उनके साथ ऐसों को भी जो किसी अगले स्तर पर हैं और अपना सम्बद्ध ज्ञान, अपनी जानकारी और कुछ किताबी जानकारी करके अपने को समृद्ध करना चाहते हैं, उनके लिए सतत–शिक्षा का दायित्व भी इस संकल्पना में समाहित हैं। अनौपचारिकता का यह दूसरा वृत्त अपेक्षाकृत अधिक व्यक्तिगत सहायता और जानकारी कराने के दायित्व का होगा। इसमें ऐसे शिक्षार्थी भी हो सकते हैं, जो अनेक कक्षा-स्तरों पर प्रवेश पाने या परीक्षा देने या योग्यता पाने के इच्छुक हों – यानी तीसरी कक्षा से लेकर आठवीं तक; या उससे भी ऊपर या किसी विशिष्ट व्यवसाय क्षेत्र में विशिष्ट प्रशिक्षण के इच्छुक भी वे हो सकते हैं। वे यह भी चाह सकते हैं कि रोज़ाना की समस्याओं और अपने चारों ओर की गतिविधियों की उनकी समझ बढ़ती रहे।

●

३ स्वरूप

शिक्षार्थी

१५-२५ आयु वर्ग में अनौपचारी केन्द्र पर आने वाले शिक्षार्थी दो प्रकार के हो सकते हैं :-

१. वे जिन्हें विद्यालय में कभी पढ़ने जाने का अवसर ही नहीं मिला हो और जो साक्षर न हो पाए हों,

२. वे जिन्हें विद्यालय में पढ़ने जाने का अवसर मिला तो था परन्तु कुछ समय पश्चात उन्हें विद्यालय छोड़ देना पड़ा हो ।

अनौपचारिक शिक्षा के सामान्य ढाँचे की दृष्टि से १५-२५ आयु वर्ग प्रायः ८-१४ आयु वर्ग से भिन्न होगा । प्रमुख भिन्नताएँ इस प्रकार होंगी :

१. ८-१४ आयु वर्ग में आने वाला शिक्षार्थी धन्धे में अंशकालीन रूप से अथवा सहायक के रूप में संलग्न होगा । इसके विपरीत १५-२५ आयु वर्ग (जिसकी ऊपरी आयु-सीमा के बारे में कठोर बन्धन जैसी बात नहीं है और यह दो-चार वर्ष अधिक भी हो सकती है ।) प्रायः पूर्णकालिक रूप से किसी धन्धे में संलग्न हो चुका होगा ;

२. कहना न होगा कि हमारे देश में १५-२५ आयु वर्ग के अन्तर्गत सामान्यतः ऐसे व्यक्ति आते हैं जिनकी शादी हो चुकी हो और जिनमें से अनेक माता-पिता भी बन चुके हों ;

३. शारीरिक और मानसिक विकास की दृष्टि से १५-२५ आयु वर्ग परिपक्वता की स्थिति पर पहुँच चुका होता है, और

४. जिसे पूर्व वर्णित तीन विशिष्टताओं का प्रभाव भी कह सकते हैं, १५-२५ आयु वर्ग पारिवारिक एवं सामाजिक उत्तरदायित्व का अनुभव करता है, वह आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने के प्रति सचेत एवं प्रयत्नशील रहता हैं, समाज का प्रतिष्ठित सदस्य कहलाने की आकांक्षा रखता है और इस हेतु सामुदायिक जीवन में (जिसमें धार्मिक एवं नागरिक पक्ष भी सम्मिलित हैं) अपनी यथोचित भूमिका निभाता हैं। वह दूसरों से अपने प्रति सम्मानजनक व्यवहार की अपेक्षा करता है।

अनौपचारिक पाठ्यक्रम की बुनियादी बातें

ऐसे वर्ग की किसी भी शैक्षिक कार्यक्रम से जो स्वाभाविक अपेक्षाएँ होंगी उनमें से प्रमुख ये हैं :

१. जिस धंधे में वे संलग्न हैं उसे अधिक कौशल के साथ कर सकें; कम श्रम करके अधिक उत्पादन (आर्थिक लाभ) करने में उनकी शिक्षा उनके लिए सहायक सिद्ध हो सके। 13

२. किसी ऐसे अन्य धंधे का ज्ञान दे सके जिसे वे सरलता से, अपनी सामर्थ्य के अनुसार पूंजी लगाकर अपने धंधे के साथ-साथ (अथवा लाभप्रद समझें तो विकल्प के रूप में) अपनाकर अपनी आय में वृद्धि कर सकें।

३. उन्हें स्वयं के तथा परिवार के अन्य सदस्यों के स्वास्थ्य की देखभाल, बीमारियों से रक्षा, स्वच्छता, पौष्टिक भोजन, शिशु पालन (विशेष रूप से महिलाओं के लिए) आदि के विषय में उपयोगी ज्ञान दे सके।

४. सामुदायिक जीवन में भूमिका निभाने की दृष्टि से जीवन के सामान्य सामाजिक, धार्मिक एवं नागरिक पक्षों तथा उनकी समस्याओं को समझने में सहायक सिद्ध हो सके। इनमें समसामयिक महत्व की घटनाएँ एवं राष्ट्रीय जीवन दृष्टि की बात भी सम्मिलित रहेगी।

५. उनमें से जो कभी किसी विद्यालय में पढ़ने गए ही नहीं अथवा वे जो वहाँ से छूटने के बाद अपना सीखा हुआ पढ़ना-लिखना अनवसर के कारण भूल चुके हैं उनको इतना ज्ञान दे सके कि वे समाचार, पत्र-पत्रिकाएँ आदि पढ़ सकें, चिट्ठी-पत्री लिख सकें, दैनिक जीवन में

काम आने वाला हिसाब-किताब कर सकें । धार्मिक वृत्ति के हों तो अपने धर्म ग्रंथ पढ़ सकें। दूसरे शब्दों में कहें तो उन्हें क्रियात्मक साक्षरता प्रदान कर सकें।

६. हमारे देश में सरकारी, गैर-सरकारी और संस्थागत नौकरियाँ कार्य-कौशल की अपेक्षा प्रमाण-पत्रों से अधिक जुड़ी हैं और जब तक वे जुड़ी रहेंगी तब तक प्रमाण-पत्रों के प्रति आकर्षण भी कायम रहेगा। इस दृष्टि से विचार करें तो १५-२५ आयु वर्ग में भी थोड़े बहुत ऐसे व्यक्ति रहेंगे ही जो कोई परीक्षा उत्तीर्ण करके प्रमाण-पत्र प्राप्त करना चाहते हों। प्रस्तावित कार्यक्रम के अन्तर्गत आने वाले शिक्षार्थियों के मामले में ऐसी परीक्षाएँ आठवीं, मैट्रिक अथवा समकक्ष हो सकती हैं।

पाठ्यक्रम

यह तथ्य दोहराने की आवश्यकता नहीं है कि अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम को सार्वजनीन शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति के लिए औपचारिक शिक्षा (नियमित विद्यालयों) के पूरक के रूप में प्रारंभ करने की संकल्पना है। अतः इसकी सीमाएँ भी स्पष्ट हैं और इससे नियमित विद्यालयों से बाहर रह जाने वाले बालकों एवं नवयुवकों की (विशेषतः १५-२५ आयु वर्ग की) सभी अपेक्षाओं की पूर्ति की एकाएक आशा करना समीचीन नहीं है। यह लचीला एवं विविधता-युक्त कार्यक्रम है जिसमें समस्या-समाधान पर मुख्य बल रहता है; इसमें बहु-विषय-संग्रथन (इंटर डिसिप्लिनरी) की प्रणाली अपनाई जाती है और सिखाने के स्थान पर सीखने पर ध्यान रहता है। १५-२५ के आयु वर्ग के लिए इसमें प्राथमिकता क्रम इस प्रकार रहेगा :

> जिन्हें अब तक स्कूल में जाकर शिक्षा पाने का कभी अवसर नहीं मिल सका है और जो किसी जीवन-यापन के काम में रत हो गए हैं, उन्हें उनकी सुविधानुसार क्रियात्मक साक्षरता की सुविधा उपलब्ध कराना, ताकि एक ओर उन्हें साक्षरता का लाभ मिल सके और दूसरी ओर जिस काम में वे लगे हुए हैं उसमें उनका ज्ञान बढ़ता रह सके, साथ ही सामान्य जन-जीवन और वातावरण के प्रति उनमें जिज्ञासा और अन्वेषण की प्रवृत्ति जाग सके।

हिन्दी-गणित

इसके लिए उन्हें हिन्दी व गणित के ज्ञान की आवश्यकता होगी। उस ज्ञान को उनकी आवश्यकता और उपयोगिता की कसौटी पर निर्धारित करना आवश्यक होगा। अनौपचारिक केन्द्रों पर क्रियात्मक साक्षरता की दृष्टि से ऐसे अनेकानेक पाठ्यक्रम – स्थानीय आधारों पर तैयार हों तब तक के लिए,अंतरिम काल में,राज्य पुस्तक मंडल द्वारा प्रकाशित प्रारंभिक पुस्तकों की सहायता ली जा

सकती है; अथवा राज्य स्तर पर चल रहे पाठ्यक्रम की आकांक्षाओं को आधार बनाकर काम चलाया जा सकता है। केन्द्र पर यह चेष्टा रखने का ध्यान अवश्य रहे कि (क) विषय-सामग्री उतनी ही चुनी जाए जितनी कि शिक्षार्थी के लिए (१) सुपाच्य हो, (२) उपयोगी हो, और (३) सुसम्बद्ध हो। (ख) बहुत विशद और तात्विक मीमांसा वाली बातें यथासंभव न आएँ बल्कि जितने जीवनपरक और व्यावहारिक तत्व विषय-सामग्री में हों, उतने ही प्रकाश में लाए जाएँ। (ग) पाठ्यक्रम में कठोरता न आने दी जाए। उसमें व्यक्ति-भेद और स्थान-भेद की गुंजाइश रह सके। भाषा सिखाने के लिए व्यावहारिक बातचीत में आने वाले शब्दों, वाक्यों की अधिकाधिक सहायता ली जानी चाहिए।

इन्हीं बातों का ध्यान गणित के प्रसंग में रखना होगा, जैसे – अधिकांश शिक्षार्थियों का काम संख्याओं की जोड़-बाकी से चल जाएगा, कइयों को मात्रा और माप-तोल की बुनियादी बातों को जरूरत होगी तो कइयों को संख्या और मात्रा के गुणा-भाग को जानने की जरूरत होगी; आय-व्यय, लाभ-हानि जैसी बातों की गणना, पूर्वानुमान और वास्तविकता की तुलना की जरूरत होगी, तो किसी की रेखागणित की जरूरत भी होगी (जो ढलाई, बुनाई या किसी मेकेनिकी काम में रत हैं)। जो भी पाठ्यक्रम बने या बना हुआ हो, उसमें से शिक्षार्थी की जरूरत चुनना और उसे तदनुसार क्रियात्मक स्वरूप देना यह अनौपचारिक केन्द्र की बहुत बड़ी देन सिद्ध हो सकती है।

वातावरण का ज्ञान

क्रियात्मक साक्षरता के साथ-साथ (और कभी क्रियात्मक साक्षरता के कार्य-प्रसंगों में भी), अपने चतुर्दिक वातावरण को समझने-सुनने की योग्यता विकसित करने के लिए और इसलिए कि वातावरण का पुष्ट ज्ञान उसके सार्थक उपयोग की भूमिका बन सके, वातावरण सम्बन्धी समसामयिक बातें, घटनाएँ, विकास-कार्य, विकास की दिशाएँ, जन-भावनाएँ, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक गतिविधियाँ, प्रजातांत्रिक तत्व, काम के स्थान का भूगोल, एक काम का विभिन्न दूसरे कामों से अन्तर्सम्बन्ध, विविध कामों का व्यापार – मनोविज्ञान, प्रचार, विज्ञापन, विज्ञापन का मनोविज्ञान, रेडियो कार्यक्रम, काम के अनुभवों का आकलन—ऐसी सैंकड़ों बातें हो सकती हैं–जो चाहे अपने स्वरूप में अनौपचारिक, आकस्मिक और क्षणिक हों, मगर जिन्हें प्रयोजननिष्ट बनाया जा सकता है।

इन बातों को किसी पाठ्यक्रमीय ढाँचे में बाँधना शायद सरल न हो, न ही उसके लिए कोई आग्रह हो सकता है, लेकिन इतना निर्देशक तत्व जरूर ध्यान में रखने की जरूरत होगी कि वातावरण सम्बोध की स्थितियाँ सहज वार्तालाप में उभरें या समस्या के रूप में उभरें, तब उनका शैक्षिक उपयोग कर लिया जाए ताकि शिक्षार्थियों का कोई अनौपचारिक अनुभव भी उनमें वातावरण के प्रति विधायक दृष्टिकोण बनाने की क्षमता पा सके।

तो, १५-२५ वाले अनौपचारिक केन्द्र में जो शिक्षार्थी नितांत निरक्षर हों उनके लिए ८-१४ के स्तर की भाँति

हिन्दी

गणित व

वातावरण की शिक्षा की रूपरेखा

उनके पाठ्यक्रम की सामग्री होगी। अन्तर दोनों में स्थिति-भेद, आयु-भेद, स्थान-भेद और मनोविज्ञान-भेद का होगा।

२. ऐसे शिक्षार्थी जो कभी स्कूल में तो गए थे, मगर किसी कारणवश बीच में पढ़ना छोड़ चुके, जिनकी शिक्षा विस्मृति की ओर उन्मुख हो गई, या जो अब सुविधा मिलने पर चाहते है कि कुछ शिक्षा पाते रहें, या जो किसी कारणवश कक्षा ८ का या कक्षा १० का प्रमाण-पत्र पाने की इच्छा रखना चाहते हैं, उनके लिए पाठ्यक्रम की विषयवारिता में बहुत विविधता रहेगी। १५-२५ केन्द्र पर अंशकालिक सतत शिक्षा के वास्तविक प्रतिभागी तो ऐसे ही शिक्षार्थी होंगे। उनमें कितने ही स्तर-भेद हो सकते हैं, जैसे – कोई चाहेगा कि परीक्षा तो कोई न दे मगर अपनी जानकारी को निरन्तर पनपाता रहे, कोई किसी कक्षा विशेष के बाद आगे की जानकारी बढ़ाने का इच्छुक होगा; कोई ऐसे भी होंगे जो चाहें कि हम कहीं कभी किसी स्तर की पाँचवीं की, आठवीं की, दसवीं की परीक्षा भी दें।

ऐसी विविधता की स्थिति में अनौपचारिक केन्द्र पर विविधता और
16 विभिन्नता के अनेक स्तर प्रत्यक्ष होंगे; मगर, चूँकि वहाँ स्वयं सीखने पर बल है इसलिए व्यवस्था पक्ष में केन्द्र संचालक को उतना ही बहुज्ञाता बनने की आवश्यकता नहीं होगी लेकिन अपने यहाँ आ रहे हर शिक्षार्थी की आवश्यकता जानने और सहायता जुटाने की अपेक्षा उससे अवश्य रहेगी।

इस स्तर पर जो पाठ्यक्रम होगा उसमें

हिन्दी

गणित, तथा

वातावरण की शिक्षा के उच्च प्राथमिक स्तर तक के तत्व तो उनके लिए होंगे ही जो या तो केन्द्र पर क्रियात्मक साक्षरता के स्तर से उठकर आगे बढ़ेंगे या बहुत स्तरीय प्रवेश सुविधा (मल्टिपल एंट्री) के अन्तर्गत कोई किसी स्तर पर तो कोई किसी स्तर पर प्रवेश करेंगे।

उनके लिए कक्षा ३ से कक्षा ८ तक के हिन्दी व गणित के पाठ्यक्रम को स्थानीयता, आवश्यकता, उपयोगिता तथा सुसम्बद्धता की दृष्टि से पुनर्नियोजित करने की आवश्यकता होगी; मुख्यतः इस बात को भी ध्यान में रखते हुए कि उनमें से यदि कोई छात्र केवल हिन्दी तथा/अथवा गणित में कक्षा ८ की परीक्षा देना चाहे तो भी उसमें वह अभियोग्यता उत्पन्न हो जाए जो उस स्तर पर सामान्य विद्यार्थी से अपेक्षित है।

इतने प्रावधान के बाद, उनके लिए जो कि कक्षा ८ की पूरी परीक्षा को ही लक्ष्य मानकर केन्द्र पर आना चाहेंगे, विद्यालयीय अन्य विषयों के वर्तमान पाठ्यक्रमों में भी वैसी ही प्रक्रिया अपनाकर व्यावहारिक अध्ययन-इकाइयाँ बनानी पड़ेगी ताकि वे शिक्षार्थी अपनी शक्ति व सुविधा की मर्यादा में उन्हें पूरा करके वैसी ही अभियोग्यता प्राप्त कर सकें जैसी कि उस स्तर पर सामान्य विद्यार्थी से अपेक्षित है।

राज्य शिक्षा संस्थान, उदयपुर ने फिलहाल इस कोटि का एक अन्तरिम पाठ्यक्रम तैयार किया है। जब तक पुनर्नियोजन तथा पूर्ण सर्वेक्षण के बाद कोई कार्यकारी पाठ्यक्रम नहीं बन जाता तब तक उस अन्तरिम पाठ्यक्रम में स्थान-भेद और स्थिति-भेद से कुछ अन्तर करते हुए, उसका उपयोग किया जा सकता है, मगर यह सदा ध्यान में रहे कि वर्तमान में चल रहे सभी अनौपचारिक केन्द्रों के पाठ्यक्रमीय अनुभवों का राज्य शिक्षा संस्थान में समाकलन होता चले और उनके उपयोग पूर्वक इस विविधाभावी अनौपचारिकता के लिए वैसे ही विविधा-भावी पाठ्यक्रम की रूपरेखा भी बने।

जहाँ तक इन अनौपचारिक केन्द्रों में पाठ्यपुस्तकों की स्थिति का प्रश्न है, वहाँ तक यह कहना उचित होगा कि अनौपचारिक शिक्षा को पाठ्यपुस्तकों में बाँधना समीचीन नहीं होगा। इन केन्द्रों को, इस शिक्षा में रत स्वयंसेवी शिक्षकों को, प्रतिभाशाली लेखकों को तथा अन्य सम्बद्ध जनों को चाहिए कि वे इस दिशा में भले छोटे-छोटे प्रयोजनमूलक, इश्तिहार, ब्रोशर, सुबद्ध पाठमाला, अभिक्रमित पाठ वगैरह बनाएँ, मगर किसी एक पाठ्यपुस्तक के विचार को दूर ही रखें तो अच्छा होगा।

३. ऊपर के दो समूहों के अतिरिक्त अनौपचारिक केन्द्र पर ऐसे जिज्ञासु भी जा सकते हैं जो या तो अपने को समसामयिक गतिविधियों से परिचित रखना चाहें, या केन्द्र की सहायता अपनी निरंतर कामकाजी शिक्षा में लेना चाहें, या जो अपनी शैक्षिक उपलब्धियों का लाभ केन्द्र के प्रतिभागियों को देने की आकांक्षा रखना चाहें। केन्द्र पर उनका विवेकपूर्ण स्वागत होना चाहिए तथापि यह ध्यान में अवश्य रखना चाहिए कि वैसे स्वागत से केन्द्र के तात्कालिक प्रयोजन तथा लक्ष्य में व्यवधान न आ जाए। उनके लिए किसी पाठ्यक्रम की आवश्यकता तो नहीं होगी, मगर पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो, मनोरंजन आदि के प्रावधान की आवश्यकता अवश्य होगी।

समय एवं समयावधि

चूँकि १५-२५ आयु वर्ग पूर्णकालिक रूप से किसी न किसी धंधे में संलग्न रहता है अतः उससे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह नित्य प्रति काफी समय शिक्षा प्राप्त करने के लिए दे सके। कौन-कौन, कब-कब, सप्ताह में कितनी बार, एक बार में कितने समय के लिए उपस्थित हो सकता है यह वैयक्तिक रूप से उसके धंधे और उसकी प्रकृति पर निर्भर करेगा। किसी के लिए प्रतिदिन

जाना संभव हो सकता है तो किसी के लिए सप्ताह में केवल दो बार या एक बार ही। फिर यह भी हो सकता है कि कोई शिक्षार्थी किन्हीं दिनों में प्रतिदिन एक बार नहीं दो-दो बार आ सकता हो और उसी शिक्षार्थी के लिए किन्हीं अन्य दिनों में हफ्तों आना संभव न हो

अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र कब चले और कितने समय के लिए चले, कब-कब अवकाश रहे, इन बातों का निर्धारण स्थानीय स्थितियों के सर्वेक्षण के उपरान्त शिक्षार्थियों की सुविधा को ध्यान में रखकर ही किया जा सकता है, किया भी जाना चाहिए। यह काम सम्बन्धित केन्द्र-संचालक का है। वह आवश्यकतानुसार चाहे जब समय-परिवर्तन कर सकता है। इस सम्बन्ध में किसी प्रकार के निर्देश प्रसारित करने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु एक बात स्पष्टतया समझ लेने की है कि निर्धारित किए गए समय पर केन्द्र में उपस्थित होना और पूरे समय तक उपस्थित बने रहना केन्द्र-संचालक के लिए अनिवार्य है, शिक्षार्थियों के लिए नहीं। उन्हें तो यह सुविधा देनी होगी कि वे जब और जितने समय के लिए चाहें केन्द्र पर आएँ, दिनों और हफ़्तों न आएँ तो न आएँ। यद्यपि समय तथा समयावधि के निर्धारण का प्रमुख आधार शिक्षार्थियों की सुविधा को बनाया जाएगा और इस कारण शिक्षा-केन्द्र को प्रतिदिन एक से अधिक शिफ्टों में चलाना भी आवश्यक हो सकता है, परन्तु साथ ही केन्द्र-संचालक की सीमाओं को भी ध्यान में रखना होगा। उदाहरण के लिए, केन्द्र को प्रातःकाल से रात्रि तक निरन्तर खुला रखना दो केन्द्र संचालकों के रहते तो संभव नहीं हो सकता। फिर यदि वे किसी नियमित विद्यालय के शिक्षक हुए तो उन्हें केन्द्र का समय विद्यालय समय से पूर्व तथा/अथवा पश्चात रखना होगा। स्थानीय समुदाय से लिए जाने वाले केन्द्र-संचालकों की भी ऐसी ही कतिपय सीमाएँ हो सकती हैं। राजस्थान में १५–२५ आयु वर्ग के लिए प्रत्येक केन्द्र पर दो केन्द्र-संचालकों एवं दो से तीन घंटे प्रतिदिन का समय प्रस्तावित किया गया है। यह समय स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार एक अथवा दो शिफ्टों में पूर्ण किया जा सकता है। फिर यह छूट तो शिक्षार्थियों को रहेगी ही कि वे इसमें से अपनी सुविधा के अनुसार जितना चाहें उतना लाभ उठाएँ। कहना अप्रासंगिक न होगा कि यद्यपि समय, समयावधि तथा अवकाश-काल का निर्धारण स्थानीय विचारणाओं के आधार पर किया जाएगा तो भी इस कार्य में सामान्य बुद्धि भी काफी सहायक सिद्ध हो सकती है। उदाहरणार्थ – भारतवर्ष के सभी ग्रामीण क्षेत्र कृषि प्रधान होने के कारण वहाँ की अधिकतर जनसंख्या फसल की बुआई-कटाई के दिनों में अति व्यस्त हो जाती है, अतः उन दिनों इन केन्द्रों में समय की छूट ऐसी स्पष्ट आवश्यकता है जिसके लिए सर्वेक्षण की आवश्यकता उतनी नहीं है जितनी कि व्यावहारिक बुद्धि और समायोजन की हैं।

अनौपचारिक केन्द्र पर शिक्षार्थियों के साथ व्यवहार

नियमित विद्यालयों में शिक्षक-छात्र व्यवहार का एक निश्चित मर्यादा-साँचा है। वहाँ शिक्षक को प्रत्येक दृष्टि से छात्रों से उच्च स्थान प्राप्त होता है।

वह कक्षा में प्रवेश करता है तो शान्ति हो जाती है और छात्र खड़े होकर उसका अभिवादन करते हैं वे उससे संकेत पाए बिना वापिस नहीं बैठते। वह कक्षा में प्रमुख स्थान पर उच्च आसन पर विराजता है। छात्र उसके संकेतों पर चलते हैं, प्रश्न पूछे जाने पर उत्तर देते हैं, बाहर जाना हो तो उससे आज्ञा प्राप्त करते हैं। उसके आने के पश्चात कोई छात्र कक्षा में आना चाहे तो उससे आज्ञा प्राप्त करता है। अनुशासन में, व्यवहार में, कार्य में न्यूनता रह जाने पर उन्हें शिक्षक के सामने स्पष्टीकरण देना होता है, क्षमा-याचना करनी पड़ती है, डाँट खानी पड़ती है, दण्ड भी भोगना पड़ सकता हैं। संक्षेप में कहें तो शिक्षक शासक होता है, छात्र शासित होते हैं। वहाँ इस प्रकार के सम्बन्ध को अनुचित नहीं माना जाता। शिक्षक आयु में, अनुभव में, शैक्षिक योग्यता में, छात्रों से बड़ा होता है, मर्यादा का केन्द्र होता है।

व्यावसायिक शिक्षकों में ऐसा व्यवहार करने की आदत पड़ जाना स्वाभाविक है और वे अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों पर भी ऐसा व्यवहार स्वभाववश कर सकते हैं, कर भी जाते हैं। अब जहाँ तक ८–१४ आयु वर्ग का प्रश्न है, यह व्यवहार संभवत-चल जाए, परन्तु १५–२५ आयु वर्ग के साथ यह व्यवहार नहीं चल सकेगा। चलाने की भूल केन्द्र-संचालक द्वारा की गई तो अप्रिय घटनाएँ घटित हो सकती हैं, न भी हों तो केन्द्र अपने शिक्षार्थियों का आकर्षण नहीं बनाए रख सकेगा और बन्द हो जाएगा। अनेक प्रौढ़-शिक्षा केन्द्रों के साथ ऐसा हो चुका है। कारण स्पष्ट है। १०–२५ आयु वर्ग शिक्षक के शासकीय व्यवहार को सहन नहीं कर सकता। शैक्षिक योग्यता को छोड़कर अन्य बातों में यह शिक्षक के समान (और अनेक बार उच्च) स्तर पर होते हैं। शिक्षक नवयुवक हुआ तो वे शिक्षार्थी उसके समवयस्क होंगे, कुछ बड़े भी हो सकते हैं। आर्थिक-सामाजिक दृष्टि से भी शिक्षक के समान बल्कि अनेक बार उससे उच्च स्तर पर होते हैं। व्यावसायिक दृष्टि से यद्यपि शिक्षक भारत में उच्च माना जाता रहा है परन्तु अब वह परम्परागत ऊँच-नीच की भावना समाप्त होती जा रही है। जहाँ तक अनुभव का प्रश्न है इन केन्द्रों पर आने वाले शिक्षार्थियों में से अनेक को जीवन का अनुभव शिक्षक से अधिक होगा। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता हैं कि औपचारिक विद्यालयों में शिक्षक और छात्रों के मध्य प्रचलित शासक-शासित व्यवहार का १५-२५ आयु वर्ग के शिक्षा-केन्द्रों में कोई स्थान नहीं है। इन केन्द्रों की सफलता तो शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य समानता के व्यवहार पर ही निर्भर करती हैं। केन्द्र-संचालक को राजा पुरु द्वारा सिकन्दर को दिए गए ऐतिहासिक उत्तर 'जैसा व्यवहार एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है', को प्रमाण-वाक्य के रूप में स्वीकार करना और सदैव स्मरण रखना चाहिए। ऐसे व्यवहार के आधार-स्तम्भ हैं - प्रेम, आदर भाव, समानता, सहानुभूति और विश्वास। केन्द्र-संचालक को अपनी वाणी, हाव-भाव, किसी से यह व्यक्त नहीं होने देना चाहिए कि वह केन्द्र पर एकत्र शिक्षार्थियों से उच्च स्तर पर है और वे वहाँ उससे कुछ प्राप्त करने या याचना करने एकत्र हुए

हैं। इस बारे में केन्द्र-संचालक की भाषा, वेशभूषा और केन्द्र में उसके बैठने का आसन, स्थान, वार्तालाप, तौर-तरीकों आदि का पर्याप्त महत्व है। वेशभूषा तो खैर आजकल कोई विशेष अन्तर नहीं लाती। पैंट-बुशर्ट हो या धोती-कुर्ता, सभी सब जगह चलते हैं। हाँ, केन्द्र-संचालक शिक्षार्थियों की ही भाषा बोले तो इससे पारस्परिक दूरी तीव्रता से कम होती है। शिक्षा औपचारिक नहीं तो शिक्षक का आसन भी क्यों औपचारिक हो। भूमि पर, टाट-पट्टी पर, खाटों पर, तिपाइयों पर जहाँ शिक्षार्थी बैठते हों, केन्द्र-संचालक भी बैठे और एक निश्चित स्थान निर्धारित कर लेने की भूल न करे। जब जहाँ जैसा अवसर, जैसी सुविधा हो; शिक्षार्थियों के मध्य, उनसे एकाकार होकर बैठे। अभिवादन पहले कौन करे, इस प्रथा को तोड़कर जो पहले कर ले ठीक, जैसा हम बाहर समाज में बरतते हैं वैसा ही वहाँ भी बरतें। और फिर अभिवादन का रूप एवं लहजा भी स्थानीय ही रहे तो क्या कहने !

कहावत प्रसिद्ध है 'यदि आप (शिक्षक) उन्हें (शिक्षार्थियों को) पढ़ाने का प्रयास करोगे तो वे सीखेंगे नहीं।' अतः मनोवैज्ञानिकों का शिक्षकों को परामर्श है कि अपने छात्रों को ऐसे पढ़ाओ कि वे उन्हें यह आभास न हो पाए कि उन्हें पढ़ाया जा रहा है बल्कि ऐसा लगे कि वे तो स्वयं अपने प्रयास से सीख रहे है। अब यदि यह आवश्यकता औपचारिक शिक्षा के क्षेत्र में, जहाँ शिक्षक का स्थान शिक्षार्थियों से निस्सन्देह ऊँचा माना जाता है, वहाँ है तो १५–२५ आयु वर्ग के
20 लिए स्थापित अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों में तो, जहाँ केन्द्र-संचालक और शिक्षार्थी समान स्तर पर होते हैं, यह नितान्त अनिवार्य होगी।

इस आयु वर्ग के शिक्षण की दृष्टि से दलगत विचार विधियाँ सर्वोत्तम प्रतीत होती हैं जिनमें खुला विचार, मुक्त संवाद और निर्भीक मत प्रकाशन का अवसर रहता है। इन विधियों में सभी बोलते हैं और सभी सुनते हैं। इस प्रकार न तो किसी के विचार व्यक्त करने के अधिकार का ही हनन होता है और न ही कोई व्यक्ति उपेक्षित अनुभव करता है। सभी को अवसर मिलता है तो ऊँचा-नीचा, शासक-शासित, वक्ता-श्रोता होने जैसी भेदभाव पूर्ण स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती। वर्ग-विचार विधियों के अनेक रूप हो सकते हैं जिनमें परिचर्या, विचार-सभा, वार्तालाप, संवाद प्रमुख हैं। परिचर्या में किसी विषय पर भिन्न-भिन्न दृष्टि से अथवा भिन्न-भिन्न पक्षों पर कई व्यक्ति बारी-बारी से अपने विचार प्रस्तुत करते हैं फिर प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान चलता है और अन्त में विषय का समाहार कर दिया जाता है। विचार-सभा में संभागी बारी-बारी से विचार प्रकट न करके आपस में बातचीत करते हैं, शंका-समाधान, प्रश्नोत्तर भी करते चलते हैं और फिर श्रोताओं को शंका-समाधान का अवसर दिया जाता है। वार्तालाप और सम्वाद में सभी उपस्थित व्यक्ति एक साथ भाग लेते हैं, केवल श्रोता कोई नहीं होता। ये सब कम संख्या के लिए ही उपयुक्त विधियाँ हैं।

अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्रों के लिए ये विधियाँ इसलिए भी उपयुक्त हैं क्योंकि केन्द्र-संचालक को अनेक बार अनेक विषयों पर जानकारी देने के लिए विभिन्न कार्य-क्षेत्रों सें विशेषज्ञों को भी आमन्त्रित करना पड़ेगा। उनसे सदा सर्वदा भाषण दिलवाने के स्थान पर ऐसी चर्चाओं के द्वारा अधिक उपयोगी एवं प्रभावी जानकारी प्राप्त हो सकेगी और शिक्षार्थियों को भी उनसे अपनी शंकाएँ दूर करने में मदद मिलेगी। सबसे बड़ा लाभ तो यह होगा कि केन्द्र वैसा शिक्षण-स्थल ही बनकर नहीं रह जाएगा जैसी कि औपचारिक स्कूलें होती हैं।

अनौपचारिक केन्द्रों पर स्कूलों की भाँति पूरे विषय और उनके विस्तार रखने की आवश्यकता भी पड़ सकती है। केन्द्र संचालकों को यह ध्यान तो रखना पड़ेगा कि उनकी मंडली के शिक्षार्थियों को किन-किन क्षेत्रों से किन-किन बातों की जानकारी की जरूरत हैं। तदनुसार यदि सुविधाजनक और संभव हो तो कभी निकटवर्ती स्कूल से, कभी किसी व्यवसाय से, कभी किसी विभाग से, कभी किसी चिकित्सालय सें उपयुक्त संदर्भ्य व्यक्ति को आमंत्रित करके मंडली में चर्चा आयोजित कराई जा सकती है। यदि कोई बात उनकी स्वयं की सीमा में हो तो वे व्यक्तिगत रूप से या समूह में उस पर चर्चा कर सकते हैं या सम्बद्ध साहित्य की उपलब्धि कराकर मदद भी कर सकते हैं। लेकिन इस स्तर पर यह आशा करना कि स्कूली बच्चों की तरह १५-२५ वर्ग के शिक्षार्थी कोई पुस्तक या कोई गृहकार्य की कापियाँ बगल में दबाए केन्द्र पर चले आएँगे, अ-मनोवैज्ञानिक और अव्यावहारिक होगा। जहाँ तक विषयगत सूचना का सम्बन्ध है, इस स्तर पर मौखिक संवाद और प्रयोजनमूलक पठन की सामग्री सुलभ कराना पर्याप्त होगा। इसके लिए यह भी जरूरी है कि जो-जो प्रकरण, जो-जो प्रश्न और जो-जो जानकारी अनुभव में आती जाए उनके लिए ४-४ या ६-६ या ८-८ पृष्ठों की प्रयोजन-मूलक सामग्री तैयार की जाती रहे या कराई जाती रहे। उसके साथ ही साथ कृषि विभाग, बैंक, डाकघर, उद्योग विभाग, सिंचाई विभाग, बिजली विभाग, वन स्वास्थ्य विभाग, जिला कार्यालय, रेलवे, यातायात, शिक्षा कार्यालय, राजस्व विभाग इत्यादि से प्रकाशित प्रसार और प्रचार साहित्य की उपलब्धि भी इन केन्द्रों पर की जानी चाहिए ताकि अनुकूल अवसर पर उनका अनकूलतया उपयोग किया जा सके।

अनौपचारिक केन्द्रों सें अध्यापन नाम की कोई भावना और धारणा न रहे तभी उसका लक्ष्य सध सकेगा। केन्द्र संचालक को यह बात विशेषतः ध्यान में रखनी होगी कि वह शिक्षक और उसकी मंडली विद्यार्थी नहीं हैं। तथापि उसे यह भी अपने मन में परखते रहना होगा कि केन्द्र के कार्यक्रमों से कौनसा सदस्य कितना लाभान्वित हो रहा है। इसी ध्यान और परख की दृष्टि की हम चाहें तो मूल्यांकन कह सकते हैं। केन्द्र-संचालक शिक्षार्थी के व्यवहार से, उसके संवाद से, उसकी पठन सम्बन्धी रुचि से, उसके जिज्ञासापरक प्रश्नों से, उसके कार्य-संपादन के तरीकों से सहज रूप में जान सकता है कि वह केन्द्र में आने के बाद कितनी और कैसी प्रगति कर चुका है। केन्द्र-संचालक चाहे तो अपनी डायरी में

प्रत्येक के बारे में अपना वीक्षण दर्ज भी करता जाए ताकि मौका पड़ने पर उसे अपनी टिप्पणी से सहायता मिल सके।

अनौपचारिक केन्द्रों में काम के स्वरूप का एक आयाम और भी हो सकता है। संभव है, केन्द्र के स्थान पर या निकट में या केन्द्र की शिक्षार्थी मंडली के किसी सदस्य के काम के स्थान पर अनौपचारिक शिक्षा के अन्य रूप, जैसे– श्रमिक पाठशाला, क्रियात्मक शिक्षा केन्द्र, विशेष प्रशिक्षण कैम्प, कोई सभा, कोई गोष्ठी, कोई रेडियो कार्यक्रम, कोई टेलीविजन कार्यक्रम, कोई व्यवसाय प्रशिक्षण, कोई नई तकनालाजी का प्रसार कार्य, कोई विकास-कार्य (सड़क-निर्माण, भवन-निर्माण, बांध-निर्माण, जलाशय-निर्माण, विद्युत योजना आदि) चल रहे हों। उस स्थिति में जैसा प्रसंग हो और जैसी शिक्षार्थियों की रुचि हो, उसे ध्यान में रखते हुए केन्द्र-संचालक उस स्थान का भ्रमण कार्यक्रम या अवलोकन कार्यक्रम भी रख सकता है। साथ ही सम्बन्धित व्यक्ति के सहयोग से उस कार्य की तकनीक, उसके सामाजिक-आर्थिक प्रभाव आदि की जानकारी उजागर करा सकता है। मगर, अनिवार्य मानकर और अनावश्यक खींचतान करके किसी कार्यक्रम को थोपना सदा ही अमनोवैज्ञानिक होगा। यह भी जरूरी नहीं कि किसी ऐसे अवसर पर हर एक शिक्षार्थी आए हो आए। यदि किसी को कोई असुविधा हो और वह वहाँ जाना उचित या आवश्यक नहीं मानता तो उसकी भी भावना का आदर होना चाहिए। मगर, लक्ष्य यह बना रहना चाहिए कि केन्द्र के चतुर्दिक चल रहे विभिन्न प्रकार के विकास कार्यक्रमों के प्रति शिक्षार्थियों में विधायक दृष्टिकोण और जिज्ञासा वृत्ति उत्पन्न की जाए।

४ संगठन

अनौपचारिक शिक्षा-केन्द्र के लिए स्थान का चुनाव मुख्यतः इस बात पर निर्भर करता है कि प्रस्तावित क्षेत्र में ऐसे युवकों की संख्या कितनी है, जो या तो विद्यालय जा ही नहीं पाते अथवा अपक्षरित हो गए। सामान्यतया १५-२५ वर्ग में न्यूनतम ३० शिक्षार्थियों पर एक केन्द्र की व्यवस्था – (दो केन्द्र संचालकों द्वारा) ठीक रहेगी : ३० की संख्या औसत मानी जाए और ४० होने पर केन्द्र-संचालकों की संख्या बढ़ानी चाहिए। चूँकि ये केन्द्र अन्ततः एक सामुदायिक सतत शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित होने हैं, अतः एक ही स्थान पर अलग-अलग कई केन्द्र खोलने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती, जब तक कि एक केन्द्र पर संख्या ४० से अधिक न हो जाए और बहुत अधिक सांस्कृतिक-सामाजिक भिन्नता की स्थिति न हो।

पूर्व सर्वेक्षण

अनौपचारिक शिक्षा पर्यावरण पर आधारित प्रवृत्ति है और इसका कार्यक्रम शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं तथा स्थानीय साधन सुविधाओं एवं

अवसरों को ध्यान में रखकर बनाया जाता है। इसलिए केन्द्र की स्थापना से पहले उस स्थान के अपक्षरित समुदाय तथा सतत शिक्षा के इच्छुक शिक्षार्थियों का स्थूल सर्वेक्षण जरूरी है। इस सर्वेक्षण में यह पता लगाना चाहिये कि अपक्षरित जन किस प्रकार के व्यवसाय में रत हैं; उनके विश्राम की अवधि और उसका समय क्या है, उनके काम की प्रकृति क्या है, क्या वे काम के उपरान्त शिक्षा और मनोरंजन के लिए समय निकाल सकते हैं, शिक्षार्थियों में से प्रत्येक की आवश्यकताएँ क्या है, अर्थात् किसे साक्षरता की जरूरत है, किसे पठन साहित्य की जरूरत है, किसे व्यावसायिक साहित्य की जरूरत है, कौन सांस्कृतिक रुचियों में प्रखर है, कौन यह चाहता है कि उसकी अधूरी स्कूली शिक्षा पूरी हो जाए, कौन यह चाहता है कि जिस काम में वह लगा हुआ है उसीमें उसका ज्ञान बढ़े, आदि-आदि। इस सर्वेक्षण के आधार पर ही केन्द्र के विशिष्ट लक्ष्यों और कार्यक्रमों का निर्धारण सम्भव हो सकेगा।

कहीं कभी ऐसी स्थिति भी आ सकती है कि किसी स्थान पर ऐसे अपक्षरित जन ही मिलें जो चाहें कि उनकी अधूरी स्कूली शिक्षा पूरी हो जाए। वहां ही सके तो ऐसी व्यवस्था ही पर्याप्त होगी कि वहां की मिडिल या सैकण्डरी स्कूल में अंशकालीन कोचिंग कक्षाएँ खुलवा दी जाएँ।

वैसा न होकर यदि विभिन्नतापूर्वक स्थितियां हों – कुछ को साक्षरता सिखानी हो, कुछ की सतत अध्ययन कराना हो, कुछ को व्यावसायिक ज्ञान वृद्धि
24 करानी हो, कुछ में सक्रिय सामाजिक चेतना जगानी हो – तो वहां अनौपचारिक केन्द्र की स्थापना हेतु स्थानीय समुदाय की तत्परता परखनी होगी। स्थानीय समुदाय में जो भी प्रभावशाली कार्यकर्ता, शिक्षक आदि हों उनका विश्वास अर्जित करने के लिए स्थान का निश्चय, केन्द्र-संचालक के बारे में प्रस्ताव, प्रकाश, पानी की व्यवस्था के बारे में राय – ये मुद्दे उन्हीं के बीच बैठकर तय करने चाहिये।

केन्द्र-संचालन का चयन

अनौपचारिक केन्द्र की धुरी केन्द्र-संचालक होगा उसके व्यक्तित्व, १५-२५ वर्ग के प्रति उसके समवयस्की व्यवहार, उसकी अकादमिक प्रतिभा तथा संगठन कुशलता पर ही केन्द्र की सफलता और उसका विकास निर्भर करेगा।

इसलिए केन्द्र-संचालक किसे चुना जाए, उसकी पात्रता क्या हो, योग्यता क्या हो और अन्य रुचियों-अभिवृत्तियों में से किसे प्राथमिकता दी जाए—यह बहुत महत्वपूर्ण निर्णय होगा।

यह मानने में आपत्ति नहीं है कि अनौपचारिक केन्द्र पर वयस्कों के साथ व्यवहार करना, स्कूल में बच्चे पढ़ाने से कहीं भिन्न कार्य है। इस कार्य में अत्यन्त धैर्य, सहनशीलता और खुले दिमाग की जरूरत होगी : कोई भी बंधी-बंधाई रीति-नीति या पद्धतियां यहाँ केन्द्र-संचालन की सदा सहायता नहीं

कर सकेगी। फिर भी इन केन्द्रों पर अपनाए जाने वाले कार्यक्रमों में सतत शिक्षा का प्रमुख विधान होने के कारण–जहाँ तक सुविधाजनक हो सके वहां तक–उच्च प्राथमिक, माध्यमिक या उच्च माध्यमिक विद्यालय के (जो निकटतम हो) द्वितीय श्रेणी के उपयुक्त अध्यापकों के चयन के सम्बन्ध में पहली राय कायम की जा सकती है। यदि वहाँ वैसा कोई व्यक्ति उपलब्ध न हो तो दो-तीन मील के दायरे में वैसे व्यक्ति की खोज हो सकती है। वह भी संभव न हो तो उस स्थान पर या निकटवर्ती क्षेत्र में वैसा ही कोई स्नातक या अधिस्नातक या समकक्ष व्यक्ति खोजने की स्थिति बन सकती है जिसे वयस्कों से समस्थानिक व्यवहार का अनुभव हो तथा जो समाज सेवा में रुचि रखता हो। ऐसे केन्द्र संचालक को चूंकि अंशकालिक ही रहने का सवाल है (आरम्भ में) अतः वैसी कोई कठिनाई की बात नहीं होगी।

स्नातक, अधिस्नातक योग्यता की पख इसलिए रखने की जरूरत है कि सतत शिक्षा में अनौपचारिक शिक्षा से सेतुबंधिता भी अपेक्षित रह सकती है और उस सेतुबंधिता के लिए उस स्तर तक शिक्षा-प्राप्त व्यक्ति कई अर्थों में काफी विषय-ज्ञान खुद भी करा सकने की स्थिति में रहेगा।

इस बुनियादी कसौटी के साथ यह देखना भी समीचीन होगा कि केन्द्र-संचालक में स्थानीय संस्कृति, रीति-नीति, स्थानीय भूगोल, सामाजिक स्थिति वातावरण आदि के प्रति लगाव हो या उसके प्रति उसका जिज्ञासामूलक रुख हो; ताकि केन्द्र के कार्यक्रमों में विविध विचार-प्रकरणों की वह स्थानीय संदर्भों में लागू (एप्लाइड) कर सकने की स्थिति में रहे।

जिसे केन्द्र-संचालक नियुक्त किया जाए, उसे उसकी अंशकालिक (३ घंटे की) सेवा के प्रसंगतः फिलहाल अधिक नहीं तो ६० रुपये मासिक अंशदान तो दिया ही जाय; मगर लक्ष्य यह रहे कि प्रति वर्ष कुछ-न-कुछ चेष्टा करके वह अंशदान एक या दो वर्षों में १०० रुपये प्रतिमाह की न्यूनतम दर पर ले जाया जाये।

केन्द्र-संचालक की उसकी नियुक्ति के साथ ही उसके दायित्वों और व्यवहार-प्रणाली का अल्पकालिक प्रशिक्षण भी देने की आवश्यकता होगी।

दायित्व

केन्द्र-संचालक के दायित्व दो प्रकार के होंगे :

(१) केन्द्र-संचालन और व्यवहार सम्बन्धी तथा

(२) सम्पर्क स्त्रोतों सम्बन्धी।

पहले प्रकार के दायित्वों में शिक्षार्थियों से व्यवहार, उनकी रुचि और आवश्यकता के अनुसार उनका समूहीकरण या उनके लिए कार्यक्रमों का निर्धारण और संचालन मुख्य दायित्व होगा। यह काम साधारण स्कूलों की तरह कक्षा बनाने का न होकर व्यक्तिगत स्तर का अधिक होगा; इसीलिए केन्द्र-

संचालक को विशेष परिश्रम करके यह काम करना होगा। इस दायित्व-निर्वाह में उसे प्रयोग और धैर्य की आवश्यकता अधिक होगी, ताकि शिक्षार्थी के लिए उपयुक्त कार्यक्रम निर्धारित किया जा सके। इस कार्यक्रम में चूंकि विविधता होगी इसलिए उसे अपना व्यवहार-सांचा भी तदनुसार लचीला बनाना पड़ेगा। केन्द्र आरम्भ करते समय किस ढंग से शिक्षार्थियों को आकर्षित किया जाए; कैसे उनकी शिक्षा की जरूरत उभारी जाए, उनमें उद्यतता उत्पन्न की जाए, उन्हें कार्यक्रम में ढलने के लिए अभिप्रेरित किया जाए—ये सब दायित्व बहुत कठिन और नाजुक भी हैं, क्योंकि केन्द्र-संचालक की जरा-सी चूक शिक्षार्थी को केन्द्र से विरक्त कर सकती हैं। उनके दायित्व में शिक्षार्थियों की आवश्यकता के अनुसार विषय-सामग्री का चयन, पठन सामग्री का सन्दर्भ, सम्बन्धित सूचनाओं की व्यवस्था आदि भी सम्मिलित हैं। उसे इतना न्यूनतम लेखा-जोखा भी रखने की जरूरत होगी कि जो शिक्षार्थी केन्द्र पर जाते हैं वे पंजीकृत होते हैं और उनकी प्रगति किस ढंग से हो रही हैं।

दूसरे प्रकार के दायित्वों में आसपास के विकास अभिकरणों, योजना अभिकरणों, स्कूलों, कार्यालयों, उद्योगों, व्यवसायों और विभाग से बहुधा सम्पर्क बनाए रखना, उपयुक्त साहित्य लाना और सन्दर्भ्य व्यक्तियों को आमंत्रित करना तथा बाहरी कार्यक्रम आयोजित करना महत्वपूर्ण हैं। यदि केन्द्र पर रेडियो, टेलिविजन, पत्र-पत्रिकाएँ उपलब्ध कराई जा सकें तो वैसे, अन्यथा समुदाय में उसे कोई व्यवस्था करके शिक्षार्थियों को उनका लाभ पहुँचा सकने की चेष्टा करना चाहिए।

केन्द्र पर केन्द्र-संचालक के दायित्व समय और आवश्यकता के अनुसार बहुरंगी और बहुप्रयोजनीय होंगे। निरक्षर वयस्कों को अक्षर-ज्ञान कराने से लेकर साक्षर और शिक्षित वयस्कों के साथ विचार-विमर्श तक के और परीक्षोत्सुक शिक्षार्थियों के लिए सहायता की व्यवस्था करने, सामुदायिक बोध और विकास चेतना जगाने के सारे दायित्व केन्द्र-संचालक को अपनी रुचि, अपनी मिशनरी भावना और समाज-चेतना पर निर्भर करेंगे।

अभिनवीनीकरण

निरौपचारिक केन्द्र के संचालन तथा विकास के लिए केन्द्र-संचालक का अभिनवीनीकरण होना आवश्यक है। इस अभिनवन का दायित्व राज्य शिक्षा संस्थान द्वारा निभाया जाना चाहिए ताकि राज्य स्तर पर सैद्धान्तिक समरूपता रहे। केन्द्र संचालक के अभिनवीनीकरण-कार्यक्रम में निर्देशक सिद्धान्त ये रहें कि उस कार्यक्रम से उन्हें अपने केन्द्र की आवश्यकताओं, शिक्षार्थियों के व्यक्तित्व और उनकी आवश्यकताओं को समझने की अन्तर्दृष्टि मिले, किस प्रकार की सहायता के लिए किस निकटवर्ती अभिकरण से कैसे प्रभावी योगदान लिया जा सकता है—यह तकनीक उन्हें सीखने को मिले; विभिन्न अभिकरणों के समुदाय से या व्यक्तियों से विभिन्न प्रकार के जो सम्बन्ध हो सकते हैं; उनको

उनकी यथार्थ भूमिका में समझते हुए भी किस तरह से उनकी क्षमताओं का लाभ केन्द्र के लिए प्राप्त किया जाए – यह हुनर केन्द्र संचालक सीख सकें। दूसरा पक्ष, केन्द्र में शिक्षार्थियों के साथ व्यवहार-साँचे का होगा जिसके बारे में केन्द्र-संचालकों को वयस्क मनोविज्ञान, उनकी कामकाज की आदत के कारण उनमें जड़ पकड़ चुकी मान्यताएँ, उनके लिए उपयुक्त शिक्षण शैली, विषयवारिता न रखते हुए भी उपयुक्त शिक्षा-प्रकरण का चुनाव कैसे करें, सामग्री कौन सी और कैसे प्राप्त करें, शिक्षार्थी की तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति कैसे करें, उनके तात्कालिक समाधान के उपाय क्या करें – ये मोटी-मोटी बातें हैं जिनके बारे में केन्द्र-संचालकों को अल्पकालिक अभिनवीनीकरण की आवश्यकता होगी। शिक्षा संस्थान चाहे तो केन्द्र-संचालकों को सीधे ही प्रशिक्षण दे अथवा प्रशिक्षण विद्यालयों या महाविद्यालयों में या परिवीक्षकों में से संदर्भ्य व्यक्ति तैयार करके शिक्षा-प्रसार सेवा केन्द्रों या प्रौढ़ शिक्षण केन्द्रों के माध्यम से भी सेवारत प्रशिक्षण की योजना कर सकता है। केन्द्र-वीक्षक और केन्द्र-संचालक दोनों का साथ-साथ प्रशिक्षण हो तो वह अधिक लाभदायक होगा।

स्थान निर्धारण

यह सर्वेक्षण संभावित शिक्षार्थियों की आवश्यकताओं, और स्थानीय समाज में सीखने की सम्भावनाओं के अतिरिक्त अध्ययन-अध्यापन सामग्री के निर्माण, उचित शिक्षण विधियों के चयन और मूल्यांकन प्रक्रिया तय करने में भी बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

कहना न होगा कि यह सर्वेक्षण शैक्षिक अधिकारी अकेले नहीं कर पायेंगे। इस कार्य में उन्हें अनेक स्थानीय व्यक्तियों एवं संगठनों की सहायता लेनी पड़ेगी जिनमें सामान्य प्रशासक ग्राम पंचायत एवं अन्य सामाजिक कार्यकर्ताओं, तथा स्त्री-पुरुष दोनों को सम्मिलित करना जरूरी हैं।

स्थान के निश्चय के बारे में ध्यान यह भी रहे कि जहाँ तक हो सके स्थानीय स्कूल भवन का उपयोग केन्द्र के रूप में किया जाए : मगर स्थानीय कारणों से स्कूल भवन के प्रति संतोषजनक रुख न दीख पड़े तो धर्मशाला में, किसी चौपाल में, पंचायत घर में – कहीं भी केन्द्र चल सकता है, बशर्ते कि वहां छाया, प्रकाश और पानी की व्यवस्था हो सके और उस स्थान के प्रति समुदाय में कोई मानसिक ग्रंथि न हो।

स्थान-भेद से स्थान निर्णय के साथ-साथ केन्द्र संचालन के निर्णय के बारे में भी कई समस्याएँ पैदा हो सकती हैं। उदाहरणार्थ, कहीं वर्ग विद्वेष के कारण किसी व्यक्ति विशेष के प्रति ग्रंथि हो सकती है, कहीं योग्य व्यक्ति की उस समुदाय में अनुपलब्धि हो सकती है, कहीं योग्यता न होते हुए भी किसी खास व्यक्ति के लिए आग्रह भी हो सकता हैं। इन सब समस्याओं का निराकरण करते हुए यह ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये कि केन्द्र की स्थापना के साथ ही, उसके आरम्भ और संचालन में केन्द्र-संचालक के व्यक्तित्व का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होगा।

चूँकि फिलहाल अनौपचारिक केन्द्र की स्थापना – दुरूह तथा दुर्गम स्थानों में – कई प्रकार के भौगोलिक, सांस्कृतिक और आप्रवासन की समस्याओं से ग्रस्त रहेगी, अतः इन अंशकालिक केन्द्रों के लिए अंशकालिक केन्द्र-संचालकों की नियुक्ति हीं अच्छा समाधान होगा – ताकि कहीं निवास की समस्या के कारण ही केन्द्र की स्थापना में बाधा न हो जाए।

केन्द्र की स्थापना में भौगोलिक स्थिति तथा व्यक्ति-तत्व के विचार के साथ-साथ ही समुदाय, शिक्षार्थी और केन्द्र संचालक तीनों के बीच आपसी विश्वास और सहयोग-सद्भावना के वातावरण की खास जरूरत होगी। इसके लिए उपयुक्त होगा कि केन्द्र की स्थापना का निश्चय हो चुकने पर सम्बन्धित केन्द्र-संचालक को स्थापना की पूरी तैयारी का कुछ समय दिया जाय जिसमें वह अनौपचारिक तथा समुदाय से और इच्छुक शिक्षार्थियों से संपर्क साधे, उनका विश्वास अर्जित करे और सद्भावनायुक्त वातावरण तैयार करे। इसके साथ ही साथ किस काम के लिए आस-पास कौन-कौन से व्यक्ति उपलब्ध हैं, उनसे संपर्क साधने और केन्द्र के संचालन में उनके योगदान की भूमिका तय करने का भी काम उस बीच वह कर सके तो उसके लिए काफी सुविधायें जुट सकेंगी।

साधन-सामग्री

१५ – २५ के अनौपचारिक केन्द्र पर जितने प्रकार के और जितनी आवश्यकता वाले शिक्षार्थी होंगे, उसी के अनुसार साधन-सामग्री की आवश्यकता होगी।

(१) वयस्कों में साक्षरता की आवश्यकता वालों के लिए पूर्वपठन सामग्री के रूप में नाना प्रकार के जीवनपरक, व्यवहारपरक, व्यक्तिपरक, घटनापरक, कार्यद्योतक, पूर्व-स्थिति और पर-स्थिति द्योतक (जैसे विकास कार्य के पहले, बाद), प्रकृति सूचक-चित्र, पशु-चित्र (जैसे गाय हो तो गायों की पास-पड़ौस की तथा दूर की नस्लों के चित्र) आदि का उपयोग किया जाना चाहिए। आरंभ में ऐसी विविधा चित्रावलियाँ एकाएक उपलब्ध नहीं होंगी; उस स्थिति में ८-१४ के लिए प्रयुक्त प्रवेशिका की पूर्व-पठन-सामग्री का उपयोग कर लिया जाए तब भी हर्ज नहीं है; मगर, लक्ष्य और प्रयास होते रहना चाहिए कि अंचल, स्थान, संस्कृति, जीवन की रीति आदि को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त सामग्री अलबम के रूप में या वैचारिक इकाइयों के रूप में तैयार की जाती रहे।

ऐसी सामग्री के मानकीकरण तथा प्रकाशन हेतु सम्पादन-कार्य में जिला-स्तरीय अनौपचारिक समिति को राज्य शिक्षा संस्थान या उसके द्वारा नियुक्त पाठ्य सामग्री विशेषज्ञ की सहायता लेकर उसे अंतिम रूप देना चाहिए। ज्यादा करके सामग्री ऐसी बने कि पूरे जिले में उसका उपयोग किया जा सके। कुछ सामग्री ऐसी भी बननी चाहिए जो राज्य स्तर पर सर्वसामान्य हो और कुछ ऐसी जो राष्ट्र स्तर पर सर्वसामान्य हो। सामग्री के निर्माण में इस प्रकार के संतुलन का ध्यान रखना नितांत आवश्यक है।

साक्षरता के लिए प्रौढ़ शिक्षण केन्द्रों ने अथवा क्रियात्मक शिक्षा केन्द्रों ने अथवा किसान साक्षरता केन्द्रों ने जो साधन-सामग्री विकसित की है, उसकी भी आवश्यकतानुसार व्यवस्था की जा सकती है। सामग्री प्रयोजनमूलक हो, वयस्क शिक्षार्थी के वैचारिक धरातल को उत्प्रेरित करने वाली हो और उसकी आवश्यकता की परिपूर्ति करने वाली हो, यह आवश्यक है (जैसे किसान को साक्षरता की जरूरत हो तो उसके लिए हल, कुदाल, घास, फावड़ा, नहर, बीज, खाद, वगैरह अथवा उनके आँचलिक पर्याय सीखने-सिखाने के माध्यम शब्द बनेंगे जिनके आधार से ध्वनि या ध्वनि-लिपि शिक्षण की स्थितियाँ उभरेंगी।

केन्द्र पर पठन, लेखन तथा चित्रादि सामग्री की व्यवस्था आवश्यकतानुसार करनी पड़ेगी और उसे प्रयोजनबद्ध करके सँजोना भी पड़ेगा। जब तक शिक्षार्थी स्वयं इच्छा न करे और अपनी जरूरत से कुछ लेख अपने पास न रखना चाहे तब तक उसके लिए उसके पास उसकी कोई पुस्तक या कापी या पाटी होने की जरूरत पर बल नहीं देना चाहिए।

जब तक केन्द्र को अपनी साक्षरता या क्रियात्मक शिक्षा की सामग्री संकलित नहीं होती तब तक प्रारंभिक कक्षाओं के लिए निर्धारित औपचारिक स्कूलों की सामग्री से काम भले चला लिया जाए; उसे ही स्थिर कर लेने की मनोवृत्ति से बचना चाहिए।

(२) १५-२५ वर्ग में एक स्तर के वे वयस्क भी होंगे जो शिक्षा की मुख्य धारा से छिटक गए हैं और अब अपनी शिक्षा को सतत बनाए रखने की आवश्यकता अनुभव करते हैं। उनमें भी दो प्रकार की जरूरतें हो सकती हैं-एक तो अपने को सामान्य ज्ञान और नागरिक चेतना के लिए सदा तरोताजा रखना चाहते हों; दूसरे, अपने को किसी कक्षा या स्तर के प्रमाण-पत्र के लिए तैयार करने की आकांक्षा रखते हों।

इन दोनों के बीच भी अन्तर-परिवर्तन की जरूरत उठ सकती है-अर्थात् आज जो सामान्य जानकारी बढ़ाने में ही रुचि रख रहा हो, कल वही यह भी तय कर सकता है कि चलो, आठवीं की परीक्षा दे दें या दसवीं की परीक्षा दे दें; अथवा आज जो किसी परीक्षा की तैयारी की आवश्यकता का अनुभव कर रहा है, वह कल यह भी फैसला कर सकता है कि परीक्षा न दें बल्कि एकाध विषय में ही अपनी जानकारी बढ़ा लें; या यह कि परीक्षा की बात छोड़ो, अपनी सामान्य जानकारी ही ताजा करते रहें। मतलब यह, कि इस कोटि में कई संभावनाएँ हो सकती हैं। किसी को पाँचवी के स्तर की बात चाहिए, किसी को आठवीं तक के स्तर की बात चाहिए तो किसी को उससे आगे भी चाहिए।

इस स्थिति में केन्द्र की साधन-सामग्री की सीमा भी बढ़ जाएगी। किन्तु औपचारिक विद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकों और सहायक पुस्तकों को ही यहाँ सामग्री बना लेना और मान लेना भयंकर भूल होगी। इन वयस्क शिक्षार्थियों को विषय-वस्तु के प्रासंगिक, प्रयोजनमूलक और सम्बोधात्मक परिचय की ही जरूरत

होगी। इसलिए इस स्तर पर पठन सामग्री का स्वरूप अभिक्रमित पाठ सामग्री का हो तो ज्यादा लाभदायक रहेगा; बड़ी-बड़ी पुस्तकों के लम्बे व्याख्यानों के स्थान पर जरूरत के प्रसंगों पर, स्थानीय स्थितियों के सन्दर्भ से, परिबोधात्मक सामग्री दे दी जाए—वह पर्याप्त होगी। यह भी जरूरी नहीं कि स्कूलों की तरह—क्योंकि उनका परीक्षा देने का विचार है—सभी विषयों की कक्षाएँ इन केन्द्रों पर चला दी जाएँ। यहाँ क्योंकि स्वयं सीखना और अपनी गति से सीखना ही मुख्य विधि है, अतः सुबोध अभिक्रमित सामग्री का निर्माण एक अच्छा उपाय है।

सतत शिक्षा के लिए, भले ही विषय क्षेत्र (भाषा के, गणित के, विज्ञान के, सामाजिक ज्ञान के) वे ही रहें जो कि शिक्षा की औपचारिक धारा में हैं किन्तु उनकी विगतवारिता और गहनता उतनी न हो बल्कि स्थानीय सन्दर्भ में हो, ऐसी सामग्री इन अनौपचारिक केन्द्रों के लिए तैयार करने का काम चलते रहना चाहिए।

उस सतत शिक्षा सामग्री के साथ-साथ ऐसी सामग्री भी इन केन्द्रों पर प्राप्त होती रहनी चाहिए जो सम-सामयिक विकास कार्यों, स्वास्थ्य और पोषण कार्यों, सामाजिक व आर्थिक परिवर्तनों से सम्बन्धित हो। उनके लिए कुछ तो समाचार-पत्र उपयोगी होंगे, कुछ रेडियो तथा टेलिविजन कार्यक्रम उपयोगी होंगे, कुछ विभिन्न विभागों के प्रचार और प्रसार सम्बन्धी फोल्डर भी उपयोगी होंगे। इस प्रकार की आकस्मिक तथा सामयिक सामग्री के उपयोग से केन्द्र की सदस्य-मंडली को समसामयिकता के प्रति सजग और जागरूक रखा जा सकता है।

(३) १५–२५ के वर्ग में एक स्तर ऐसे शिक्षार्थियों का भी हो सकता है जो शिक्षार्थी तो शायद न रहे मगर केन्द्र में रुचि रखने वाले, शौकिया उसमें भाग लेने वाले, मनोरंजन या विश्रामकालीन सदुपयोग के विचार से ही वहाँ जाते हों। इसे सदस्यों के लिए समाचार-पत्र आदि तथा अन्य प्रकार की पठन-सामग्री भी आवश्यक होगी। उनके लिए चर्चा के विषय, भाषणों का आयोजन, उनकी जरूरत का व्यावसायिक साहित्य, चित्रपट्ट, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि की व्यवस्था भी केन्द्र पर आवश्यक मानी जानी चाहिए।

सारांश यह कि जैसी और जितनी केन्द्र की जरूरतें होंगी, वैसी और उतनी साधन-सामग्री केन्द्र पर सँजोने की दृष्टि-मति रहनी चाहिए तभी वह केन्द्र साक्षरता से लेकर जिज्ञासु-मंडली तक की अपनी विकास-यात्रा पूरी कर सकेगा और सही अर्थ में सामुदायिक सतत शिक्षा केन्द्र बन सकेगा।

कार्यक्रम

१५-२५ वर्ग के इस अनौपचारिक केन्द्र पर चूँकि लक्ष्य का दायरा साक्षरता, सतत शिक्षा और जिज्ञासु-मंडली का है, अतः इसका कार्यक्रम भी तीन आयामों का होगा : (क) साक्षरता कार्यक्रम या क्रियात्मक शिक्षा (ख) सतत शिक्षा और (ग) सामान्य शिक्षा। इसके अलावा चूंकि उपरोक्त तीन प्रकार के

प्रतिभागी सदस्य भी वहाँ होंगे, उनके लिए भी इन दायरों के कार्यक्रम वहाँ होंगे। इनके अलावा केन्द्र की सजीवता और उसकी सामुदायिक प्रकृति को बनाए रखने वाले समारोह, उत्सव, पर्व, भजन-कीर्तन, चर्चा-गोष्ठी, सम्मेलन, प्रदर्शनी, खेलकूद आदि मनोरंजनात्मक तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का अनौपचारिक दौर-दौरा तो रहेगा ही।

(१) साक्षरता कार्यक्रम या क्रियात्मक शिक्षा के लिए कुछ समय के लिए-यों कहिए कि व्यक्ति-प्रसंग से ५-५ या १०-१० मिनट या समूह-प्रसंग से १५-२० मिनट तक-किसी रूप में औपचारिक कक्षा-कार्यक्रम करने होंगे उन कार्यक्रमों में शिक्षार्थी को अक्षर-ज्ञान कराना, स्वयं सीखने की सामग्री देना, आवश्यकता पड़ने पर सहायता करना, वर्ग में चर्चा और संवाद पैदा करना-इस तरह की पद्धतियाँ अपनानी और विकसित करनी पड़ेंगी। इस कार्यक्रम में व्यक्ति-भिन्नता से कार्य-गत भिन्नता काफी रहेगी; बहुत कुछ अर्थों में तो इस क्रियात्मक शिक्षा में औप-चारिकता का ताना-बाना प्रायः वैसा ही रहेगा जैसा कि अभी तक कक्षा-शिक्षण में रहता है-अर्थात कुछ बातें समूह में बताकर स्वयं कार्य करने और सीखने का मौका दिया जाता है और तब व्यक्तिशः सहायता की जाती है।

क्रियात्मक साक्षरता के दौरान दूसरा कार्यक्रम होगा विभिन्न विषयों पर और स्थानीय सन्दर्भों में वातावरण पर और लोक जीवन पर चर्चाएँ संवाद तथा सूचनाओं का आदान-प्रदान। यह कार्यक्रम विशद् व्यापक रूप से सतत शिक्षा और सामान्य शिक्षा के अन्तर्गत भी चलता रहेगा; अन्तर यह हो सकता है कि साक्षरता-ग्रुप में वह किसी प्रारंभिक स्तर का हो और जिज्ञासु मंडली के ग्रुप में पेचीदा स्तर का हो और सारे समूह के लिए किसी सामान्य स्तर का हो।

अनौपचारिक शिक्षण में साक्षरता वर्ग के लिए हिन्दी व गणित की पाठ्यक्रमीय इकाइयों को सम्मिलित करना चाहिए तथा चर्चा, संवाद आदि में वातावरण का ज्ञान, लोक विज्ञान, वन-जीवन आदि की इकाइयाँ सम्मिलित करनी चाहिएँ।

जहाँ-कहीं या जब-कभी सुविधा हो जन-जीवन, व्यापार-व्यवसाय, देश-दर्शन, मेला, समाचार आदि से सम्बन्धित डाक्युमेंटरी फिल्में दिखाने, स्लाइडें दिखाने तथा महत्वपूर्ण भाषणों के टेप सुनाने की व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

(२) सतत शिक्षा के स्तर पर कार्यक्रमों की विविधता और अनन्यता ज्यादा होगी। वहाँ किसी के लिए निर्देश बैठक, किसी के लिए साहित्य की व्यवस्था, किसी के लिए विशेष सन्दर्भों की खोज, किसी के लिए स्कूल से सम्पर्क, किसी के लिए विशेष सहायक की खोज, किसी या किन्हीं के लिए चर्चाओं के आयोजन का कार्यक्रम, किन्हीं के लिए विशेष वार्त्ताओं का आयोजत आदि अनेक प्रकार के कार्यक्रमों की स्थिति अवसर के अनुकूल बनेगी। आवश्यकता और

प्रयोजनमूलकता और विशेष काम की तात्कालिकता से ही केन्द्र का वह कार्यक्रम निर्धारित होता रहेगा।

(३) सामान्य शिक्षा-कार्यक्रमों में विविध प्रयोजनों से विविध प्रकार के कार्यक्रमों की स्थिति बनेगी। उनमें साधारण चर्चा, वार्तालाप, संवाद, गपशप, कहानी कथन, लोक नृत्य, झाँकी, झलकी, समारोह, उत्सव, त्यौहार आदि से लेकर रेडियो, टेलिविजन, विशेष वार्त्ता, आमंत्रित व्यक्तियों से साक्षात्कार, प्रयोजननिष्ठ सूचना-प्रसारण, वाचनालय, पठन कार्यक्रम आदि अनेकानेक प्रकार के और अनेक स्तरों के कार्यक्रम हो सकते हैं। एक प्रकार से इन कार्यक्रमों में आकस्मिकता और अनौपचारिकता के तत्व अधिक होंगे, बल्कि यों कहें कि इन कार्यक्रमों के द्वारा आकस्मिक अनुभवों और अनौपचारिक साधनों को केन्द्र में शिक्षोपयोगी बनाने का उपक्रम होगा। इन कार्यक्रमों में पारस्परिक तालमेल और सहयोग-समन्वयन के वे कार्यक्रम भी होंगे जो इस केन्द्र को स्कूल या स्कूलों से, पंचायत से, विकास कार्यालय से, अन्य समाज-कल्याण केन्द्रों से, उद्योग-व्यवसाय से, विकास कार्यों से जोड़ने वाले होंगे। उदाहरण के लिए, अन्य किसी अभिकरण द्वारा आयोजित कार्यक्रम में व्यवस्था सम्बन्धी सहायता, खेलकूद, पानी पिलाने में, छोटे-मोटे कामों में सहायता, चंदा उगाहना, स्वयंसेवक का काम करना, सूचना प्रसारित करना.....आदि-आदि। ऐसे कामों और और अधिकाधिक अनौपचारिक स्वरूप की ओर झुकाव करते रहने से ही यह केन्द्र वास्तविक अर्थों में सामुदायिक केन्द्र की ऐसी संकल्पना तक विकसित हो सकेगा जिसमें एक सतर्क जिज्ञासु-मंडली आजीवन शिक्षा की भावना से शिक्षा-रत होगी।

नियंत्रण तथा वीक्षण

अनौपचारिक केन्द्र चूँकि नगरीय व ग्रामीण तथा दुरूह एवं दुर्गम स्थानों पर चलेंगे अतः इनके वीक्षण तथा निर्देशन की भी व्यापक व्यवस्था अपेक्षित होगी। यह व्यवस्था निदेशालय केन्द्र से लेकर उप-जिला स्तर तक सुचारु रूप से संवादी तथा गुम्फित हो, यह जरूरी है। इस व्यवस्था में पुनः पूर्णकालिक तथा अंशकालिक वीक्षकों की भी जरूरत है, ताकि एक ओर तो प्रायः सप्ताह में एक दिन हर एक केन्द्र के वीक्षण की स्थिति बने और संचार-प्रणाली प्रभावकारी बनी रहे।

निदेशालय स्तर पर

अच्छा होगा कि निदेशालय के समाज शिक्षा विभाग में अनौपचारिक शिक्षा प्रकोष्ठ स्थापित हों और वहाँ से सब प्रकार के निर्देशन, समन्वय तथा योजना-न्वयन के कार्यों का संचालन हो। वह प्रकोष्ठ सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनों स्तरों पर केन्द्रों की संख्या, उनकी संस्थापन-योजना, वित्तीय प्रभार, पाठ्यक्रम समन्वय आदि के कार्य करे। उस स्तर पर (अथवा सचिवालय स्तर पर) एक

अनौपचारिक शिक्षा बोर्ड बन सके-जिसमें शिक्षा विभाग के निदेशक का पदेन सचिवत्व रहे और प्रौढ़ शिक्षा समिति, विकास विभाग, योजना विभाग, कृषि, चिकित्सा व उद्योग विभागों के भी उसमें सदस्य रहें; साथ ही दो विधान सभा सदस्य तथा दो प्रशिक्षण महाविद्यालय के प्राचार्य भी रहें तो अनौपचारिक शिक्षा सम्बन्धी राज्य व्यापी नीति व निर्देशक सिद्धान्तों का भी निर्धारण होता रहे और अलग-अलग दिशाओं में धन व श्रम विफल होने से बच सके।

मंडल स्तर पर

निदेशालय के अनौपचारिक प्रकोष्ठ की सहायता के लिए प्रत्येक मंडल (रेंज) में एक प्रायोजना अधिकारी रहे जो मंडल स्तर पर चल रहे केन्द्रों और उनके कार्यक्रमों का निरीक्षण अधिकारी हो। उसका कार्यालय जहाँ तक हो सके-शिक्षा उपनिदेशक के कार्यालय के निकट हो तथापि हो किसी केन्द्रीय स्थान पर जहाँ से चारों ओर की दूरी प्रायः समान हो। कार्य भार की अपेक्षा में उसके पास पर्याप्त लिपिक वर्ग हो-कम से कम भी आरंभ में एक आशुलिपिक, एक लेखालिपिक तथा एक कनिष्ठ लिपिक व एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी तो उसके पास हों ही। प्रायोजना अधिकारी मंडल में चल रहें केन्द्रों की प्रभावकारिता, निरीक्षण, उनकी उपयोगिता-अनुपयोगिता की जाँच, नये केन्द्रों की सिफारिश आदि के लिए जिम्मेदार रहे। उसे वित्तीय अधिकार भी इस सीमा तक प्राप्त रहें कि मंडल स्तर पर से ही-जिला अनौपचारिक शिक्षा समिति की सिफारिश के अनुसार-वह गैर-सरकारी संस्थाओं को उनके अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों के लिए वित्तीय मदद स्वीकृत कर सके। उसकी पदेन स्थिति-आरंभ में भले ही जिलाधिकारी की रहे तथापि मंडल में ६०० से ऊपर केन्द्र हो जाने पर उपनिदेशक स्तर की बननी चाहिए। मंडल स्तर पर प्रायोजना अधिकारी की सहायता के लिए व उसे सुझाव देने के लिए जिलों में बनी अनौपचारिक समितियों में से एक-एक तथा मंडल स्तर पर निदेशक द्वारा मनोनीत दो-तीन सदस्यों की एक सलाहकार समिति भी होनी चाहिए।

जिला स्तर पर

जिला स्तर पर अनौपचारिक केन्द्रों के संचालन में रत गैर-सरकारी संस्थाओं के एक-एक प्रतिनिधि तथा अंशकालिक केन्द्र-वीक्षकों में से मनोनीत सदस्यों से मिलकर जिला अनौपचारिक शिक्षा समिति बने जो जिला स्तर पर केन्द्रों की नीति, उनके पाठ्यक्रम, कार्यक्रम इत्यादि के सम्बन्ध में पुनरावलोकन करती रहे तथा उसे गत्यात्मक बनाते रहने के सुझाव दे।

उस समिति के सुझावों का क्रियान्वयन करने हेतु जिला शिक्षाधिकारी कार्यालय पर एक वरिष्ठ उपजिला शिक्षाधिकारी हो। आरम्भ में यह दायित्व उस शिक्षाधिकारी को दिया जा सकता है जो पंचायत समिति शिक्षा के लिए जिम्मेदार है। मगर जब जिले में ८० से ऊपर केन्द्र खुल जाएं तो एक स्वतन्त्र शिक्षाधिकारी की नियुक्त होनी चाहिए। यह शिक्षाधिकारी जैसे कि जिलावीक्षक

कहे जिले में अनौपचारिक केन्द्रों के प्रभावी वीक्षण तथा उनकी समस्याओं के तत्काल निराकरण के लिए जिम्मेदार होगा। जिले में अनौपचारिक कार्यक्रमों के स्तरीकरण, साधन-सामग्री के मानकीकरण तथा राज्य पाठ्य-पुस्तक मंडल के माध्यम से नानाविध अभिक्रमित सामग्री (चित्र, मानचित्र) आदि के प्रकाशन के लिए भी वही प्रामाणिक अधिकारी होगा जो एक ओर तो वास्तविक कर्मक्षेत्र और दूसरी ओर मंडल प्रायोजना अधिकारी के बीच सेतु का काम करेगा। उसकी सहायता के लिए कम से कम भी एक आशुलिपिक, एक लेखा लिपिक, एक कनिष्ठ लिपिक तथा एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी हो।

उप जिला स्तर पर

यदि अनौपचारिक केन्द्रों की संख्या किसी उप जिले में २५ तक पहुंच जाए तो एक पूर्णकालिक केन्द्र-वीक्षक (उप जिलाशिक्षाधिकारी स्तर का पद) की व्यवस्था होनी चाहिए जिसकी सहायता के लिए एक कनिष्ठ लिपिक तथा एक चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी हो। उस केन्द्र-वीक्षक के साथ प्रत्येक ४ वाह्य केन्द्रों पर एक तथा प्रत्येक ५ अंतरंग (नगरीय) केन्द्रों पर (यदि एक ही नगर में वे हों) एक-एक अंशकालिक केन्द्र-वीक्षक होना चाहिए।

पूर्णकालिक केन्द्र-वीक्षक का महत्वपूर्ण दायित्व होगा–किसी केन्द्र की स्थापना के लिए पूर्व सर्वेक्षण, सम्पर्क, केन्द्र संचालक का प्रस्ताव, साधन-सामग्री पहुंचाने का काम, स्कूलों और केन्द्रों के बीच, केन्द्रों तथा अन्य विभागों के बीच समायोजन व संतुलन के काम करना। उसे स्वयं भी किसी एक या दो केन्द्रों को अपने सीधे वीक्षण में रखना चाहिए ताकि वह केन्दों की कार्य प्रणाली का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करता रह सके। अपने सहायक अंशकालिक वीक्षकों से उसका सीधा पत्राचार चलता रहे और वर्ष में कम से कम तीन-चार बार प्रत्येक केन्द्र पर वह उपस्थित भी होता रहे।

अंशकालिक केन्द्र-वीक्षकों का दायित्व केन्द्र संचालक की सीधी सहायता करने का होगा। प्रति सप्ताह कम से कम हर एक केन्द्र पर एक बार जाकर उन्हें केन्द्र संचालक के साथ सह-भागीत्व करने तथा उनका मार्गदर्शन करने का काम करने चाहिए। ये अंशकालिक केन्द्रवीक्षक या तो वरिष्ठ-अध्यापकों (प्रथम श्रेणी) में से या प्रशिक्षण विद्यालयों के अनुदशकों में से हों और वह संभव न हो तो उच्च प्राथमिक विद्यालयों के प्रधानाध्यापक, पंचायत समिति के शिक्षा प्रसार अधिकारी या माध्यमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापकों में से उन्हें चुना जा सकता है। अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों में इन अंशकालिक-वीक्षकों का दायित्व कार्यक्रम सलाहकार, डिमांस्ट्रेटर, नवाचार-प्रणेता, सहकारी निर्देशक चाहे जो कुछ कहें-वह होगा; अर्थात वह केन्द्र की गतिविधियों में केन्द्र संचालक के लिए एक महत्वपूर्ण घटक भी होगा और केन्द्र-संचालक तथा जिला-वीक्षक के बीच सेतु भी होगा। उसे अपने कार्य के लिए आरंभ में भले ही प्रति माह ६० रुपये का

पारिश्रमिक दिया जाए, मगर क्रमश: उसे १५० रु० प्रति माह तक बढ़ाने का प्रयास ध्यान में रखना चाहिए ।

इस सम्पूर्ण ढाँचे में सन्निहित प्रायोजना अधिकारी, पूर्णकालिक जिला-वीक्षक, उप जिलावीक्षक तथा अंशकालिक वीक्षकों के लिए उनके नये ढंग के कामकाज, व्यवहार और आचार-प्रणाली सम्बन्धी अभिनवन कार्यक्रम भी विकसित होने चाहिए । राज्य शिक्षा संस्थान, जो कि केन्द्र-संचालकों के प्रशिक्षण का दायित्व निभाएगा, उसे इन वीक्षकों के प्रशिक्षण का भी विकास करना चाहिए । उस प्रशिक्षण में निर्देशक सिद्धान्त ये ध्यान में रहें कि ये अधिकारी सत्ता प्राप्त निरीक्षक नहीं होंगे वरंच केन्द्रों के कार्यक्रम में योगदान और सहायता करने वाले संदर्भ्य व्यक्ति होंगे । उनका दायित्व त्रिमुखी होगा - अनौपचारिक समिति के प्रति, केन्द्रों के प्रति और निदेशालयी सूत्रों के प्रति ।

अन्तिम लक्ष्य

जैसा कि लिखा जा चुका है अनौपचारिक शिक्षा जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रवृत्ति है । जीवनपर्यन्त शिक्षा का लक्ष्य तभी पूरा हो सकता है जब शिक्षार्थी में सीखते चले जाने की आकांक्षा सुदृढ़ होती चली जाए, और वह बाहरी सहायता पर कम से कम निर्भर रहता हुआ स्वयं जाने, स्वयं सीखे और उपलब्ध अवसरों का और स्थितियों का अधिक से अधिक लाभ उठाए । अत: कहना न होगा कि अनौपचारिक शिक्षा के किसी भी कार्यक्रम की सार्थकता सीखने की जिज्ञासा और स्व-शिक्षण की क्षमता को अधिक से अधिक तीव्र और सुदृढ़ करने में निहित है ।

संक्षेप में कहा जाए तो अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम को शिक्षार्थियों में ये बातें पैदा करनी चाहिए:

— वातावरण की और अपनी स्थितियों की समझ और उनमें परिवर्तन की आवश्यकता का एहसास ।

— वैज्ञानिक विचारधारा अपनाने की आस्था ।

— कार्य करने की अपनी क्षमता में वृद्धि की तत्परता ।

— सीखी जाने वाली बातों को कार्य में बदलने की भावना ।

— परिवर्तन का घटक बनने की आकांक्षा ।

— प्रजातान्त्रिक कार्य-विधि द्वारा सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विकास में योग देने की प्रवृत्ति ।

— सतत सीखते रहने का वातावरण बनाने और सभी के लिए निरन्तर और स्वयं सीखने के अवसरों को बढ़ाने में सहायता करने की उत्कंठा ।

Sub. N...ional Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Administration
17-B, SriAurbindo Marg, NewDelhi-110016
DOC. No....3.11
Date........................15/7/82

NIEPA DC
D00311

Ready to Rethink & Change?

One of the essential tasks for educators at present is to change the mentalities and qualifications inherent in all professions; thus they should be the first to be ready to rethink and change the criteria and basic situation of the teaching profession, in which the job of educating and stimulating students is steadily superseding that of simply giving instruction.

—**Learning to Be**